बाँकीदास-ग्रंथावली

तीसरा भाग

बारहट कविया मुरारिदान अयाचक
बा० महताबचंदजी खारैड विशारद

बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला—७



बाँकीदास-ग्रंथावली

तीसरा भाग

संपादक

बारहट कविया मुरारिदान अयाचक (जयपुरवाले)

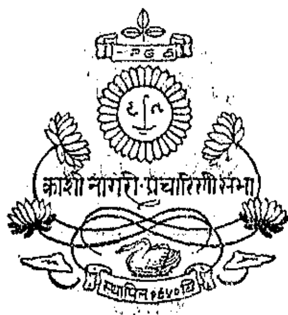
बा० महताबचंद्र खारैड विशारद (जयपुरवाले)

प्रकाशक

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी

प्रथम बार] १९३८ [मूल्य १)

Published by
The Hony. Secy.
N. P. Sabha,
Kashi.



भूमिका

महाकवि श्री बाँकीदासजी के प्राप्त ग्रंथों में से **सात** ग्रंथ तो प्रथम भाग में और **दस** ग्रंथ दूसरे भाग में प्रकाशित हुए हैं। अब इस **तीसरे भाग** में **नौ** ग्रंथ और एक संग्रह यों १० प्रकाशित होते हैं जिनके नाम ये हैं :—

१ जेहलजसजड़ाव	६ सिद्धराव छतीसी
२ कायर बावनी	७ वचनविवेक पच्चीसी
३ झमाल नखशिख	८ कृपण पच्चीसी
४ सुजस छतीसी	९ हमरोट छतीसी
५ संतोष बावनी	१० स्फुट संग्रह

"स्फुटसंग्रह" में नीचे लिखे गीत, छंद और खंड-ग्रंथांश हैं:—गीत २५, छंद ९, रस अलंकार के ग्रंथ का खंडित अंश, वृत्तरत्नाकर भाषा का खंडित अंश, काव्य के गुणदोष का निर्णय (खंडित अंश) और दोहे ३।

२५ गीतों में कुछ तो कविया मुरारिदानजी व हिंगलाजदानजी के संग्रह में से हैं, शेष जोधपुर के कविराजा मेहरदानजी की दोनों पुस्तकों वा अन्यत्र से प्राप्त हैं। खंडित ग्रंथ भी उक्त कविराजजी के ग्रंथों से निकाले गए हैं। गीतों में से १५ गीतों पर कविया मुरारिदानजी ने टीका की है। पाँच गीत मूल गीतों के साथ नहीं लिखे गए, टीका ही के

साथ लिखे गए। २० गीत मूलरूप बिना टीका के भी और दस टीका के साथ भी लिखे गए हैं। दोहा एक टीका सहित दिया गया है। खंडित ग्रंथांशों की टीका, उनके अपूर्ण होने के कारण, हो नहीं सकती थी। जब कभी संपूर्ण ग्रंथ मिलेंगे तभी टीका आदि का उद्योग हो सकेगा।

तीसरे भाग के उक्त १० ग्रंथ कहाँ से प्राप्त हुए, उसे ही दिखलाते हैं:—

(१) जेहलजस जड़ाव—कविराजा मेहरदानजी (बाँकीदासजी के प्रपौत्र) की हस्त-लिखित पुस्तक से।

(२) कायर बावनी—स्व० क० रा० श्री मुरारिदानजी कश्मीरवालों से।

(३) भमालनखशिख—एक प्रति उक्त मुरारिदानजी कश्मीरवालों से। दूसरी प्रति म० म० रा० ब० ओझा गौरीशंकरजी से। तीसरी स्व० लाला श्रीनारायणजी जयपुरवालों से।

(४) सुजस छत्तीसी—उक्त श्री ओझाजी से।

(५) संतोष बावनी— ,, ,, ,, ।

(६) सिद्धराव छत्तीसी—,, ,, ,, ।

(७) वचन विवेक पचीसी—यह "मार्त्तंड" में छपी थी जो हमें मिली नहीं, परंतु एक प्रति कविया मुरारिदानजी जयपुरवालों से बा० महताबचंदजी को मिली।

(८) कृपण पच्चीसी—उक्त कविया मुरारिदानजी से। यह कृपणदर्पण से बहुत अंशों में भिन्न है। द्वितीय भाग के प्रकाशन तक यह नहीं मिली थी।

(९) हमरोट छत्तीसी—जोधपुर-निवासी बारैठ श्री सीतारामजी लालस ने नक़ल भेजी। यह इन सब ग्रंथों के पीछे मिली। नक़ल ता० १७ सितंबर सन् १९३२ को आई थी।

(१०) स्फुट संग्रह—इसकी प्राप्ति ऊपर लिखी जा चुकी है*।

कहते हैं कि बाँकीदासजी ने कोई दो हजार गीत रचे थे। और उक्त तीनों भागों के (७ + १० + ९ = २६) ग्रंथों के अतिरिक्त और भी कई ग्रंथ रचे थे जो चारणों और अन्य विद्वान् पुरुषों के यहाँ उद्योग से मिल सकते हैं। जिन ग्रंथों का होना ज्ञात हुआ है, परंतु अभी तक मिले नहीं, उनकी सूचना दी जाती है :—

(१) कृष्णचंद्र-चंद्रिका—अलंकारों का वर्णन कृष्ण-कथा में है; बा० सीतारामजी लालस जोधपुरवालों से ज्ञात हुआ। इसी में के कुछ छंद स्यात् "स्फुट संग्रह" में भी आए हैं।

* द्वितीय भाग की भूमिका पृ० ५ पर इस तीसरे भाग के लिये ७ ग्रंथों के नाम दिए थे। उनके अतिरिक्त सं० ८ और ९ तथा स्फुट संग्रह और मिल गए। ग्रंथों की प्राप्ति भी दूसरे भाग में दी जा चुकी थी। यहाँ सुगमता के लिये फिर से लिख दिया है—ह. ना.।

(२) विरह-चंद्रिका—गोपियों के विरह का वृत्तांत शांत और करुण रसादि में है। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

(३) चमत्कार-चंद्रिका—चमत्कार भरे काव्य के चोचलों के छंद हैं। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

(४) मानयशोमंडन—जोधपुर के म० मानसिंहजी का यश। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

(५) चंद्रदूषणदर्पण—वियोगिनी ने चंद्रमा में दोष बताए हैं। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

(६) वैशाखवार्त्तासंग्रह—ऋतुओं का वर्णन। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ कि यह ग्रंथ उक्त स्व० मुरारिदानजी कश्मीरवालों के पुत्र के पास है।

(७) श्री दरबाररी कविता (वा श्री दरबार का कवित्त)—उक्त लालसजी से जाना गया।

(८) रस तथा अलंकार का ग्रंथ—उपरि-लिखित खंडांश से अनुमान है।

(९) वृत्तरत्नाकर भाषा वा व्याख्या—उपरि-लिखित खंडांश से अनुमान है।

(१०) महाभारत छंदोऽनुवाद—प्रथम भाग की भूमिका में वि० भू० पं० रामकरणजी ने इस नाम को लिखा है।

(११) गीत वा छंदों का संग्रह—अनेक पुरुषों से इनका फुटकल रूप में बहुसंख्यक होना सुना गया है।

(१२) ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह—उक्त श्री ओझाजी के संग्रह में है।

(१३) अंतर्लापिका—उक्त लालसजी से ज्ञात हुआ कि ऐसा कोई पृथक् ग्रंथ है*।

इनमें से सं० ८ और ६ के अतिरिक्त [जिनके खंडांश "स्फुट-संग्रह" में (इस भाग में) प्रकाशित हुए हैं] अन्य ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आए। परंतु उनका होना उक्त महानुभावों के संग्रह में पाया गया। सं० १२ (ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह) के संबंध में उक्त म० म०, रा० ब० श्री ओझाजी ने हमको ता० ३०-३-३१ को लिखा था। उसका

* पं० रामकरणजी ने प्रथम भाग की भूमिका में २४ वा महाभारत सहित २५ ग्रंथ बताए थे तथा दूसरे भाग की भूमिका में उनके वचनानुसार २७ ग्रंथ होना हमने लिखा था। हर्ष का स्थान है कि अब ग्रंथ २७ से भी अधिक प्रकट होते आ रहे हैं। २६ वा २७ से अधिक तो छप ही जाते हैं। यदि उनके आगे के अन्य ग्रंथ सब मिल गए तो ४० की संख्या तक जा पहुँचेंगे। जिस दिन "ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह" साहित्य-संसार के सामने आवेगा उस दिन उस महाकवि की विद्वत्ता और विद्याप्रेममयी प्रतिभा का प्रकाश होगा। और २००० गीतों का संग्रह डिंगल-प्रेमियों के प्रयास से संसार को मिलेगा तब तो क्या ही हर्ष होगा। ह० ना०।

पुनश्च—बाँकीदासजी के आत्मज भारजी कवि के रचे "पाबू-प्रकाश" (बड़ा) में अंतिम छंदों में, ऐसा आया है:—"चवी बतीस छतीस या बका आप मे बंक" इसमें भी बाँकीदासजी के ३२ या ३६ ग्रंथों का होना प्रतीत होता है।—ह० ना०।

सारांश यहाँ इसलिये देते हैं कि उसके जानने से ग्रंथकार की योग्यता और ग्रंथ की उपयोगिता का कुछ भान पाठकों को अभी से हो सके :—

"अनुमान २० वर्ष पूर्व मुंशी देवीप्रसादजी ने बाँकीदासजी की संगृहीत "**ऐतिहासिक बातें**" नाम की हस्त-लिखित पुस्तक नकल कराकर मुझे दी थी। उसमें अनुमान २८०० से कुछ अधिक बातें हैं। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। परंतु उसमें कोई क्रम नहीं है। एक बात मालवे की है तो दूसरी गुजरात की और तीसरी कच्छ की। इस प्रकार एक महासागर सा ग्रंथ है। उसको क्रमबद्ध करना बड़े परिश्रम का काम है। और अनेक पुस्तकें पास रखने से क्रमबद्ध हो सकता है। ग्रंथ क्या है इतिहास का खजाना है। राजपूताना के तमाम राज्यों के इतिहास-संबंधी अनेक रत्न उसमें भरे पड़े हैं। परंतु उनको छाँटना बड़े श्रम और समय का काम है। उसमें राजपूताना के बहुधा प्रत्येक राज्य के राजाओं, सरदारों, मुत्सद्दियों आदि के संबंध की अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। उसमें मुसलमानों, जैनों आदि के संबंध की भी बहुत सी बातें हैं। अनेक राज्यों और सरदारों के ठिकानों की वंशावलियाँ, सरदारों के वीरता के काम, राजाओं के ननिहाल, कुँवरों के ननिहाल आदि का बहुत कुछ परिचय है। कौन कौन से राजा कहाँ कहाँ काम आए, यह भी विस्तार

से लिखा है अनेक राजाओं के जन्म और मृत्यु के संवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि दिए हैं। .....एक राज्य के तअल्लुक की बातें सौ-पचास जगह आ जाती हैं।......अब इसका क्रम लगाया जा रहा है। उदयपुर राज्य की सूची बन गई है। अब मैं अपने इतिहास के क्रम से राज्यों की बातें छाँटता हूँ।"...इत्यादि। इस नोट से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह संग्रह कितने काम का है और इससे बाँकीदासजी की कैसी ऐतिहासिक योग्यता प्रमाणित होती है। वे कोरे कवि और लाखपसाव के खानेवाले प्रशंसक बारैठ ही नहीं थे, अपितु बड़े ही परिश्रमी विद्वान्, लेखक और इतिहासवेत्ता विद्या-व्यवसायी पुरुष थे।

इस प्रकार उक्त त्रयोदश ग्रंथ-रूप सामग्री उपलब्ध हो जाने से "बाँकीदास-ग्रंथावली" के चतुर्थ तथा पंचम भागों के लिये अच्छा अवकाश संप्राप्त हो सकता है।

इस ग्रंथावली का दूसरा भाग सन् १९३१ में प्रकाशित हुआ था। इसका तीसरा भाग प्राय: थोड़े ही मासों के अनंतर बहुत कुछ तैयार हो गया था। परंतु कुछ ग्रंथों की टीका होनी थी और "हमरोट-छतीसी" तथा "कृपण-पचीसी" के संप्राप्त होने तथा उनके संशोधन और टीका टिप्पणी के तैयार होने एवं शंका-समाधान में बहुत समय चला गया। इसके अनंतर अनेक स्थलों से "स्फुट-संग्रह" का संग्रह होता रहा। कई एक गीत और छंद ऐसे हैं कि

उनकी टीका होनी चाहिए थी। परंतु दुःख है कि ऐसा नहीं हो सका, वे बाकी रह गए। परंतु अन्यों की टीका तो बारहट श्री मुरारिदानजी ने, बा० महताबचंदजी के सहकार्य्य में, कर डाली। कई अन्य अनिवार्य कार्यों ने कभी टीकाकारों को तो कभी इस क्षुद्र लेखक को समाप्ति तक पहुँचने से रोका। अतः बहुत सा समय वृथा निकल गया और प्रिय पाठकों को इस भाग के प्रकाशन की प्रतीक्षा करनी पड़ी, तदर्थ विनम्र भाव से क्षमा की प्रार्थना है। पाठकों को एक हर्षवर्द्धक समाचार सुनाकर हम अपने कर्तव्य (क्षमा-प्रार्थना) को पूर्ण कर देते हैं। वह यह है कि इस अवसर में "ब्रजनिधि-ग्रंथावली" प्रकाशित हो गई तथा "रघुनाथ-रूपक" सर्वांग-सुंदरता का रूप धारण करने के योग्य होने लग गया। ये दोनों ग्रंथ-रत्न इस "बा० रा० चा० पुस्तकमाला" के माणिक्य होंगे।

बाँकीदासजी की जीवनी के संबंध में

बाँकीदासजी के जीवन-चरित के संबंध में नीचे लिखी बातें और ज्ञात हुई हैं :—

(नोट १—उनके भतीजे कवि आसिया बुधा की, महाराजा मानसिंहजी की तारीफ़ में कही हुई "दुवाबैत" में से बाँकीदासजी के संबंध के छंदादि। ये बातें बुधा ने अपनी आँखों देखी लिखी हैं, इससे महत्त्व की हैं।)

(नोट २—कवि बुधा ने महामंदिर और महामंदिर के बाग का वर्णन करके महाराज मानसिंहजी के सभासदों का वर्णन किया है। उसमें काव्य और शास्त्र की चर्चा चली तब कवियों को सभा में बुलाया गया। उसमें कविवर कविराजा बाँकीदासजी भी आए और उस समय उनकी योग्यता का जो वर्णन बुधा* ने किया है वही अंश यहाँ दिया जाता है :—)

"मानूं देवूँ की सभा इंद्र कै रूप।
ऐसी बिध बैठे जोधाँण के भूप ॥ १५१ ॥
चरचा की बात चाली कविरावूँ कूँ बुलाए।
सौ चरचा करण कूँ कविराव भी आए" ॥ १५२ ॥

कविराव-वर्णन

"जिसही देवानाथकै आगै। सोदुसगरांम ॥
चारणूं की ओट। विद्या का धांम ॥ १५३ ॥
दोलाका जाया। सांदुउका छात ॥
विद्या में विसेक। ऐसा माहापात ॥ १५४ ॥
सब ग्रंथूं समेत। गोताकूं पिछाणै ॥
डींगल का तो क्या। संस्कृत भी जांणै ॥ १५५ ॥

* यह बुधा कवि बाँकीदासजी का भतीजा या भाई था। स्वयं अच्छा कवि था। इसकी कुछ कविताओं का संग्रह हमारे पास है वही पुस्तकाकार—इसी माला में—"बुधा-ग्रंथावली" भाग १ नाम से प्रकाशित होगा।—ह० ना०।

आपभी असंब । उकत अनोठो धरै ॥
जिस सांगै की जोड़ की। कुण कवि सो होड करै॥ १५६ ॥
जिसका वंदै आषर । सब धरा का भूप ॥
वंस का उद्दोत । वरन का रूप ॥ १५७ ॥
औरभी सोंदुआंमैं । चैन अरु पीथ ॥
डींगल मैं षूब । गजब जसका गीत ॥ १५८ ॥
और भी आसीयूं मैं । कवि बंक ॥
डींगल पींगल संस्कृत । फारसी मैं निसंक ॥ १५९ ॥
मत अरु मतंक । सदरासमससुधी ॥
कुतबीकातो क्या । मीरबाजगां मैबूधो ॥ १६० ॥
हाफिजां उरसी हेलंव । साहनांमा सीराज ॥
बगलष छोगा बगदाद । तास किनान रूम ताज॥ १६१ ॥
मिसनवी दीवान मीछना । सिकंदरनाँमा सार ॥
सीसथाँ मायराँ समेत। और भी किताबाँ अपार॥ १६२ ॥
जिस बंक कूँ हसती अरु घोड़ा । सुषपालू गांम ॥
मोती कड़ा मूँदड़ा । और भी रोकड़ा दाम॥ १६३ ॥
लाष पसाव समाप कै । कुरब ऊठण का दीया ॥
ऐसी बिध माँन महाराज । बंक कूँ भाषा-गुर कीया ॥१६४॥
औरभी जुगतावण सूर । सवाइतेजमाल ॥
बंस का दावा । बरन का ढाल ॥ १६५ ॥
वीसोतर का छोगा । दिल का उदार ॥
जस जुगतेस कूँ बषाँणै । सबही संसार ॥ १६६ ॥

चक्रधारियूँ की गदा आँकस । विद्या का समंद ॥
महाराज का दवागीर । अैसे अैसे कवंद ॥ १६७ ॥
साक्षात सरस्वती का भंडार । अैसे कविराव आए ॥
सो हिंदुआण का सूर । माँन महाराज कूँ विरदाए ॥१६८॥
बिछायत पर बैठे । सरब ही कवीसर ॥
अवरी का कोड । जिसकूँ सरस्वती का वर ॥ १६९ ॥
जिस बिछायत पर । थटाव चरचा के थहे ॥
अौर भी कवी सुराँवै । क्या क्या ग्रंथ कहे ॥ १७० ॥
चोरासी रूपग । अठारै पुराँण ॥
चवदै शास्त्र वेद च्यार का वषाँण ॥ १७१ ॥
अौर भी षट भाषा । नव व्याकरण ॥
भाँत भाँत का ग्रंथ । भाँत भाँत का गण ॥ १७२ ॥
विध विध की चतुराई । विध विध के विधाँन ॥
सो सब ही सुणे । महाराजा माँन" ॥ १७३ ॥

इस उपरि-लिखित उद्धरण से स्पष्ट है कि बाँकीदासजी का सम्मान और पद जोधपुर की राजसभा में कितना उच्च था और वे संस्कृत, प्राकृत, डिंगल, पिंगल और फारसी आदि के कैसे पंडित थे। फारसी की कई किताबों के नाम भी बुधा कवि ने लिख दिए जिनको बाँकीदासजी ने पढ़ा था और उनकी फारसी की लियाकत का प्रकाश महाराज मानसिंहजी की राजसभा में अन्य अनेक कवियों और पंडितों के सामने हुआ था। "फारसी में निःशंक" बेधड़क कहने-

वाले थे। मीरबायजगाँ शायद मसनवी आजरबायजाँ हो। हाफिज से मतलब दीवाने हाफिज। उरसी शायद कसायदे उर्फी हो। हेलंब शायद यहयाउलउलूम हो। साहनांमा से तात्पर्य शाहनामा फिरदैासी। शोराज से मुराद सादी शीराजी। बगलष शायद बलख बुखारा। बगदाद से मदरसए बगदादी निजामिया की इंतिहाई दर्सी किताबों से मुराद हो। किनान से कनआँ मुल्क हो। रूम से मसनवी मैालाना रूम। कनआँ से माहे कनआँ से मुराद अर्थात् यूसुफ जुलेखा हो। ताज से मुराद अरब के उलमा की किताबें। मसनवी से और भी मसनवियाँ जैसे मसनवी मीरहसन वा दिलसनोवर इत्यादि। दीवान से दीवाने हाफिज वगैरह। सिकंदरनामा बहरी व् बेरी। सीसथाँ से रुस्तम पहलवान या उसके मुल्क सीसताँ की दास्तानों से हो।

बाँकीदासजी को लाखपसाव, हाथी-पालकी सिरोपाव, कड़ा बलेवड़ा आदि तथा ताजोम सोना इत्यादि मिले। महाराज ने बाँकीदासजी को अपना भाषा-गुरु बनाकर सम्मानित किया और उनसे विद्या पढ़ी।

"गजब जिसका गीत" ऐसा कहने से बाँकीदासजी की गीत-रचना की उत्तमता प्रकट है, कि उनके दिल दहला देने-वाले, वीररस उपजानेवाले गीत बहुत प्रभावोत्पादक होते थे। इत्यादि उक्त बखाँण से अनेक बातों के संकेत और पते लगते

हैं। डिंगल भाषा में गीत-रचना ही प्रधान मानी जाती है और बारहट कवि गीतों को बहुत ही सावधानी, चतुराई, ओज और शक्ति से भरकर कहते हैं। फिर उनका बोलना बहुत ही आग उनमें फूँक देता है। उनके मुख की "सरस्वती" उनके गीतों को सौगुना रोचक और मज़ेदार बना देती है। इनके गीतों ने कायरों को वीर बना दिया, गई बीती लड़ाइयों को जय प्रदान करा दी, भगोड़ों के दिलों में वीर-रस भरकर युद्ध में लड़ाकर जय दिला दी, रियासतें उलटी दिला दीं और न जाने कितने और 'गजब' ढा दिए। इसी रंग-ढंग के गीत बनाने और कहनेवाले बाँकीदासजी भी थे। "स्फुट संग्रह" के गीत सं० (१७) में बाँकीदासजी ने स्वयं अपनी विद्या, प्रतिभा और जानकारी को बताया है। इसको पढ़ना उचित है। "चौंसठ अवधान... ।"

(२) बाँकीदासजी के संबंध में सीतारामजी लालस जोधपुरवाले लिखते हैं:—

(क) "बाँकीदासजी के पिता फतहसिंहजी का विवाह बागसी की **सरवड़ी** परगना सिवाना, इलाका जोधपुर, में हुआ था। बाँकीदासजी के मामा चार भाई थे। बचपन में बाँकीदासजी ने कुछ समय तक सरवड़ी गाँव [अर्थात् ननिहाल ही] में विद्या प्राप्त की थी। एक समय जब वे १३ ही वर्ष के थे [संभवत: संवत् १८५१ वि० हो] तो उनको उनके मामा ऊकजी **बाले** गाँव के ठाकुर नाहरसिंहजी के पास ले गए।

ऊकजी ने बालक की प्रशंसा की कि **भाँणूँ** बहुत होनहार मालूम देता है। जो **खूबडजी*** [उनकी कुलदेवी] की पूर्ण कृपा रही तो भविष्य में बड़ा भारी कवि होगा। इस पर ठाकुर ने पूछा कि क्या यह कविता भी करता है ? तो **ऊक**जी ने कहा कि हाँ यह कविता बढ़िया करता है। यह भाँणूँ आशुकवि अभी से है। इस उत्तर को सुनकर ठाकुर ने कविता करने की आज्ञा की। इस पर बालक बाँकीदासजी ने तुरंत दो दोहे और एक सैणोर गीत रचकर सुना दिए। बालक की अनूठी कविता से ठाकुर प्रसन्न हुए। और कहा कि यह माँगे वही दूँ। बाँकीदासजी मोताज लेने से इनकारी हो गए। उस पर ठाकुर ने हुक्म दिया कि इस बालक कवि को एक अच्छा सा घोड़ा दे दो और कानों में सोने की मुरकियाँ [मोती की जगह] पहना दो। परंतु बाँकीदासजी ने फिर भी लेने से इनकार किया। इस पर ठाकुर के कामदार ने बाँकीदासजी से कहा कि क्या तुम्हारा विचार हाथी लेने और मोती-कड़ा पहनने का है जो इतना कहने पर भी लेने से इनकार करते हो। इस ताने पर बाँकीदासजी को कुछ क्रोध आ गया और वे बोले कि यदि खूबडजी (माताजी) की मेहरबानी जैसी आज है वैसी ही आगे भी

---

* खूबडजी" चारणों की एक कुलदेवी का नाम है। इस देवी का स्थान सरवड़ा में है। इसको "खँडेरवल" की माय भी कहते हैं।—लालस सीतारामजी।

बनी रही तो अवश्य ही एक दिन हाथी सवार हूँगा और कड़े मोती पहनूँगा। इतना कहकर ठाकुर से क्षमा माँगकर अपने मामा के साथ बाँकीदासजी गाँव को लौट आए। होनहार कवि की यह प्रतिज्ञा कैसी उत्तम रीति से उसके जीवन में पूरी हुई सो बाँकीदासजी और महाराज मानसिंहजी के चरित्र में स्पष्ट ही है। एक समय कविराजा बाँकीदासजी हाथी-सवार जोधपुर में होकर जा रहे थे उसी समय उक्त ठाकुर रास्ते में मिले। तब अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने को उक्त ठाकुर को कारण मानकर कृतज्ञता का एक सोरठा कहा। यह सोरठा प्राप्त नहीं है। *

उक्त लालसजी ने बाँकीदासजी का एक दूसरा आख्यान लिख भेजा है। वह इस तरह है कि—कविराजा बाँकीदासजी अपने गाँव जाते तब खाँडप गाँव भी जाया करते क्योंकि उसमें लाधूसिंह सोलंकी क्षत्रिय रहता था जो अपने आतिथ्य-सत्कार के लिये विख्यात था। उसका यह दृढ़ प्रण था कि उसके यहाँ या गाँव में कोई भी पुरुष अतिथि आ जाता तो उसको बिना आतिथ्य-सत्कार के वह जाने ही नहीं देता था। बाँकीदासजी का इससे बड़ा स्नेह था।

---

* स्व० ठा० भू सिंहजी के "विविध संग्रह" में रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी को कृतज्ञता का दोहा बांकीदासजी ने कहा था सो पृ० ११९ पर देखें। तथा "बाँ० दा० ग्रं०" प्रथम भाग की भूमिका पृ० १०, ११ पर आख्यान देखें।—ह० ना०।

खाँडप गाँव सरवड़ी के समीप ही था। और "लाधा" की उदारता से बाँकीदासजी को उससे दिली ताल्लुक हो गया था। एक समय की बात है कि महाराजा मानसिंहजी ने कविराजा बाँकीदासजी से पूछा कि "दूला" जैसा उदार राजपूत अब भी कोई है ? तब उत्तर में कविराजा ने अर्ज किया कि अब भी है, और इसही "लाधा" का आख्यान कह सुनाया, और लाधा की प्रशंसा में नीचे लिखा एक गीत भी पढ़कर सुनाया :—

छंद छोटा साँणोर

"झरहरियो आभ न कूमाँडे झड़, बिषमाँ जग परहरियो वाव।
जो उगणतरो थरहरियो जग में, चालक न परहरियो चाव ॥१॥
अँन बिन लोक चहूँ चक ओड़ै, गया मालवे छोड़े गेह।
दोवों नाडकाँ छेह दिखायो, आसावत दरियाव अछेह ॥२॥
मानव बिकै पाव अँन साटे, दुरभिष जग में ताव दियो।
अँन राँधे कोरे नह ऊतर, **लाधे** हद सो भाग लियो ॥३॥
भेटे कोय गयो नँह भूषो, परजाची कीधो प्रतिपाल।
खोटे समय उणंतरे **खाँडप**, सोलंकी दरसियो सुकाल ॥४॥"

इस दातार के प्रण का आख्यान और उक्त गीत को सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बाँकीदासजी को कहा कि ऐसे दानवीर राजपूत को हम भी देखना चाहते हैं। कविराजा ने उसको बुला भेजा। उसके आने पर महाराज ने उसको मेहरबानी करके उसके गाँव खाँडप ही में जागीर

इनायत की। लाधा के वंशज उस जमीन को अब तक खाते हैं। लाधा सोलंकी के वंश के राजपूत सदा से वीर और परोपकारी होते चले आते हैं।

महाराजा अजीतसिंहजी के समय में ओठी लोग खाँडप गाँव को लूट-खसोट करने लगे तब उनके साथ लड़कर यह लाधा वीरगति को प्राप्त हुआ और अपनी कीर्त्ति संसार में अमर कर गया।

(४) उक्त लालसजी ने अपने पत्र ता० २०।११।३२ में एक चमत्कार कविराजा बाँकीदासजी का लिखा। महाराज मानसिंहजी के समय में कहीं से एक **अम्बाराय** नाम का कवि जोधपुर में आया और जोधपुर के कवियों की योग्यता का अंदाजा करने तथा उनको विजय करने के विचार से उसने एक छप्पय लिखकर महाराज की सेवा में पेश किया और अर्ज कराया कि आप कवियों का आदर करते हैं, आपके पास कई प्रसिद्ध कवि भी हैं, अतः मेरी छप्पय का अर्थ आपके किसी कवि से करा दिया जाय तो मैं जानूँगा कि आपके पास कोई कवि है; नहीं तो आपको ये लोग धोखा दे रहे हैं। इनमें वास्तव में कोई योग्य कवि है नहीं और आपको विद्वानों की पहचान नहीं है। छप्पय को महाराज ने बाँचा विचारा, परंतु अर्थ खुला नहीं। तब छप्पय को बाँकीदासजी के पास अर्थ कर देने को भेजा। बाँकीदासजी भी प्रथम तो इस ओघड़ छप्पय को पढ़कर चक्कर में पड़ गए।

परंतु फिर उस पर विचार करके उसके प्रयोजन और तात्पर्य्य को समझ गए। और अच्छी तरह संगति बिठाकर महाराज को अर्थ निवेदन करके अर्ज किया कि सभा के बीच में उस कवि को बुलाकर इसका अर्थ सुनाया जाने का प्रबंध करा दिया जाय। महाराज ने प्रबंध करा दिया। सभा में बाँकीदासजी ने उस छप्पय को और अर्थ को इस प्रकार कह सुनाया :—

छप्पय

"झुरत पत्र झुर गए तु पत्र, न न पत्र सु झुर गए।
मुरत अंब मुर गए तु अंब, न न अंब सु मुर गए॥
खुलत कमल खुल गए तु कमल, न न कमल सु खुल गए।
भमत भमर भम गए तु भमर, न न भमर सु भम गए॥
अंबराय विद्वान पर उपज्यो भ्रम सोचत बिसर।
चँदबदनी चंदा अवे बिलखत चंद सुकवन पर॥"

बाँकीदासजी ने इस छप्पय का अर्थ व प्रयोजन इस प्रकार बताया—कि कोई तीन स्त्रियाँ सहेलियाँ आपस में अपने पतिदेवों के पुनरागमन के संबंध में, जैसा कि स्त्रियों का यौवनावस्था में स्वभाव होता है, बातें करती हैं। उनमें पहली ने दूसरी से कहा कि हे सखी तू देख वृक्षों के पत्ते झड़ झड़कर गिरते हैं और दूसरी ने कहा कि हाँ गिर गए हैं अर्थात् पतझड़ का मौसम आ गया और वसंत ऋतु आनेवाली है सो पतिदेव (अपने वादे के अनुसार) अब अवश्य

आ रहे होंगे। तो तीसरी ने कहा कि पत्र तो झड़ गए परंतु अभी वसंत नहीं आई। यदि आ जाती तो पतिदेव आ ही जाते।—इस पर पहली ने कहा कि वसंत का न आना तू कैसे कहती है, देख आँब के वृक्षों के मोर (बगर) आ गए (यह खास वसंत का लक्षण है)। इस पर दूसरी ने कहा हाँ, आँब के तो मोर आ ही गए। इस पर तीसरी ने कहा कि नहीं नहीं आँबे मोरीजे नहों (अर्थात् तुमको प्रेम के आवेश ही में ऐसा दृश्य सा केवल प्रतीत होता है) क्योंकि आँब मोरीज जाते तो (वसंत-आगमन में) पतिदेव अवश्य आ जाते।—इसी प्रकार कमलों के खिलने और भँवरों के गुंजारते फिरने को देखकर तीनों में विवाद हुआ। तीनों सखियों के प्रियतम पतिदेव विदेश जाते हुए अपनी प्रियतमाओं से वसंत ऋतु तक लौट आने का वादा (वचन) दे गए थे। उस प्रतीक्षा में आपस में ये विरह-कातर युवतियाँ प्रेमालाप कर रही हैं। उनकी अवस्था प्रेमोन्माद की सी हो रही है। एक कहती है, वसंत आ गई; दूसरी उसकी पुष्टि करती है तो तीसरी उनकी बात का विरोध करती है। और फिर उनमें कोई अपनी कही बात ही का भ्रम करती है, कोई विस्मृत होती है तो किसी को चंद्रमा का उदय मानों अमृत टपकानेवाला देवताओं का विमान ही है जिसमें उसके प्रीतम आ रहे हों ऐसा विस्मय होता है। फिर चाँद को देखकर अपनी भूल पर अफसोस करती है और यथार्थ स्मृति

हो जाने पर कहती है कि नहीं चाँद तो ऊगा है। यह किसी पर भी अमृत नहीं बरसाता है और न यह विमान ही है जिसके द्वारा प्रीतम आते हैं, इत्यादि। इसमें तीनों नायिकाएँ स्वकीया प्रोषितपतिका हैं। इनमें उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा का भेदाभास भी है। इसमें अलंकार विभावना संभावना पर्य्याय और संदेह का संकर है।—इत्यादि काव्याङ्गों के विस्तृत वर्णन के साथ कविराज ने व्याख्या की तो वह अंबाराय कवि मुग्ध हो गया और महाराज से भरी सभा में अर्ज की कि यह कवि आपका कोरा कवि ही नहीं है, यह तो दूसरा **गणेश** है। महाराज मानसिंहजी ने तभी से बाँकीदासजी को प्रसंग-वश इस नूतन नाम—"**गणेश**"—से संबोधित किया। वस्तुतः यह पदवी बुद्धि की प्रखरता, अलौकिक सूझ-बूझ के कारण ही नहीं शरीर की स्थूलता के कारण भी ठीक फबती हुई थी।

(५) बाँकीदासजी के तीन भाई और थे। इनके एक भाई ने (जो अच्छा कवि था) "पाबूप्रकाश" ग्रंथ बनाया जो इसके वंशज करणीदान के पास है। यह करणीदान भी अच्छा कवि है और उसने "करणी-प्रकाश" ग्रंथ बनाया है। "पाबूप्रकाश" ग्रंथ दोहा, चौपाई, तोटक आदि छंदों में है और कविता उच्च कोटि की है। इस ग्रंथ को यह करणीदान सहसा किसी को धीजता वा दिखाता नहीं है। जोधपुर के महाराज कर्नल सर प्रतापसिंहजी ने उद्योग किया

और भी कई लोगों ने उद्योग किया परंतु यह पुरुष ग्रंथ किसी को नहीं देता है। इसकी ऐसी इच्छा तो है कि बीकानेर के महाराज चाहें तो उनको दे दें। (यह वार्त्ता जोबनेर ठाकुर साहिब रा० बा० राज्य श्री नरेंद्रसिंहजी के मुख से सुनकर लिखी गई।) क्या ही अच्छा हो कि महाराज बीकानेर इस कवि को बुलाकर आदर करें और यह ग्रंथ उससे श्रवण करें और अपने पुस्तकालय में रखावें तो डिंगल-साहित्य के ऐसे रत्नों की रक्षा हो जाय नहीं तो ये नष्ट हो जायँगे*।

(६) बाँकीदासजी की महिमा में इस भाग के "स्फुट संग्रह" में "केसो इंद्रजीत..." सं० २ यह कवित्त बहुत गौरव का है। उसे अवश्य देखें विचारें।

---

* "पाबूप्रकाश" एक बड़ा और एक छोटा छप गए जो हमारे संग्रह में हैं। एक बड़ा मोड़जी आसिया का रचा है। यह मोड़जी बुधाजी का बेटा था। बुधाजी बांकीदासजी के भतीजे वा भाई बताए जाते हैं।—ह० ना०।

मोड़जी का पुत्र पाबूदान है, करणीदान नहीं है, यह संशोधन उक्त सीतारामजी लालस ने कराया है।— ह० ना०।

"पाबूप्रकाश बड़ा" तो "सुमेर प्रेस" जोधपुर का संवत् १६८६ का छपा हुआ है। इसका रचयिता मोड़जी है। पुस्तक के अंतिम छंदों में ये दोहे संबंध प्रकट करते हैं—

ग्रंथों का सार-सूचना

इस तृतीय भाग के अंतर्गत ग्रंथों का परिचय, उनकी सारावली तथा उनका संक्षिप्त माहात्म्य दिया जाता है कि जिससे पाठकों को सुविधा रहे। कई ग्रंथ ऐतिहासिक हैं जिनमें से इतिहासांश के स्पष्टीकरण की आवश्यकता जानकर वहाँ नोट लगा दिए हैं। इनमें संख्या १ और ६ तथा ९ में भारतवर्ष के प्रसिद्ध दाताओं और वीरों के यश-प्रकाशन की पूर्ण चेष्टा की गई है। कवि की जानकारी और वर्णन-विधि अत्यंत सराहनीय है। कवि के यथार्थ आशय को अनेक स्थलों में हम प्रकट करने में असमर्थ और असहाय रहे हैं। यह कार्य्य अन्य विद्वानों के लिये शेष रहा ही

चली बतीस छतीस या बड़ा बाप मो बंक।
तबूँ भाग जाड़े तिके आखर आडे अंक ॥ १ ॥
मालमधर बुधमालरा आखर चादू छोड़।
कह दूंपग चेला किया रेणाकज राठोड़ ॥ २ ॥
कवराजा नरपत किये मेधा पारख मांन।
कव मत मंडण गुण किये बंधू बाँकीदान ॥ ३ ॥
पाल पोरसातन प्रगट जोड नाम दिय जब्ब।
कब जूँ जाऊ गुण कियो मोडै पोछ मुजब्ब ॥ ४ ॥

"पाबूप्रकाश" छोटा जोधा अगरसिंहजीकृत जोधपुर का ही छपा है। पृ० सं० ३६ है बुधाजी का भी कविराज होना पाया जाता है। अर्थात् बुधाजी भी कविराज हुआ।—ह० ना०।

समझना चाहिए। अन्य ६ ग्रंथों में नीति, उपदेश, शिक्षा, विशेष वर्णन; कुनीति-निवारणार्थ सदुपदेश-प्रकाशन बड़ी ही उत्तमता से आए हैं, सो पाठकों को, ध्यानपूर्वक पढ़ने से ही, अवगत हो सकेंगे और तभी लाभ और आनंद मिल सकेगा।

(१) "जेहल जस जड़ाव"

यह ७४ दोहों-सोरठों का ग्रंथ बाँकीदासजी ने कच्छ-भुज के प्रसिद्ध राजा जेहल के यश-गायन में कहा है। यह **जेहल**, जेसल या **जेहा भारामल** जाड़ेचा का पुत्र था। इसलिये इसको "भाराणी" भी लिखा है, जैसे फूलाणो (फूल का पुत्र)। यह जाड़ेचा यादवों का प्रसिद्ध वीर और दातार हुआ है जिसका नामी पूर्वपुरुष "सम्म" वा "समो" था। इसी कारण जेहल को कवि ने "सामां" ऐसा भी नाम देकर संबोधन किया है। यथा—"दोहा ३० में सामां इंद समंदतू"। तथा दोहा ३३ में 'सामां दाता दोठ सह"। इसी तरह सोरठा ५१, ५२ और ६५ में भी। साम की १४७वीं पीढ़ी में "ऊनड" हुआ जो बड़ा दानी और वीर था और सिंध के पास के इलाके का राजा था—बिलोचिस्थान और सिंध के बीच का विभाग। इसका बड़ा भाई "जाम मोड़" था जो कच्छ का राजा हुआ। इसकी चौथी पीढ़ी में फूल का पुत्र प्रसिद्ध **लाखा फूलाणी** हुआ जो बड़ा वीर और दानी था।

और याचकों में प्रात:स्मरणीय गिना जाता है। इसकी कुछ पीढ़ियों के पीछे भारमल के यह जेहल हुआ। भारमल वा भारा यह कई जगह इस ग्रंथ में आया है और जेहल (वा जेहा) को भारमल का पुत्र लिखा है। यथा—"भारा राव" छंद १ में। दोहा ३९ में मो घर **भारहनन्द**, दोहा ५० में "**भाराणी** जस भार", सोरठा ५३ में "**भाराणी** भूलो नहीं", सोरठा ५४ में "सुनजर **भारहमाल** सुत"। सोरठा ५९ में "भारानंद चकोर भत।" ऐसा आया है। इसको कच्छ का राजा कहा है यथा दोहा ३ में "काछ नरेस कुँवार।" और आगे चलकर "भुज" का राजा कहा है-यथा दोहा ४ में "भुज जेहल नूँ भेटियो।" और दोहा २१ में "इण भुजनूँ आवंत"। सोरठा ५० में "भुज मंडण थारा भुजां"। सोरठा ५५ में "भुजरो भलो भवाड़ियो।" इसके पूर्वज ऊनड़ और **लाखा** थे सो कवि ने भी बताया है। यथा—दोहा १२ में है "जेहो ऊनड़-हरो"। सोरठा ५३ में "ऊनड़रो आचार"। दोहा ७ "सुंणजस गाजै सरग में **ऊनड़ लाखा** भूप। भाराणी दाता भलो राणी जाया रूप"॥ ये जाड़ेचा यादव थे, इसको कवि ने स्पष्ट दरसाया है और वंश का गौरव वर्णन किया है। यथा दो० ९ में--"ज्यां जेहा जादव जिसो।" तथा दो० १७ में—"हव जादव जस बस हुवो जग जाहर जेहल्ल।" दो० ११ में—"जाड़ेचा घर जोत।" सो० ४९ में—"जाड़ेचा दाखै जगत"।

इससे स्पष्ट है कि ये जाड़ेचा खाँप के यादव-वंश के थे और परंपरा से वीर और दानी होते आए हैं। ("रासमाला" से सार उद्धृत किया जाता है।)

"रासमाला" (फार्वस साहिब का गुजरात का इतिहास-संग्रह) में लिखा है कि गजनी की गद्दी पर जामनरपति राजा था। उसकी १३वीं पीढ़ी में "सामपत" उर्फ "समों" हुआ। इसी से इसके वंशज "समां" कहलाए जो आगे चलकर **जाड़ेचा** नाम से प्रसिद्ध हुए। जाम समां के हाथ से मुसलमानों के युद्ध में गजनी जाती रही। फिर ये बिलूचिस्तान और सिंध के बीच में आकर बसे और वहाँ राज्य किया। समां की १४ वीं पीढ़ी में "लखियार भड़" राजा हुआ। उसके लाखोजी १ और लाखोजी के ऊनड़ हुआ। यह लाखोजी पहिला था ऊनड़ का बड़ा भाई "जाममोड़" हुआ। वह कच्छ में **पाटगढ़** के राजा बाधम "चावड़ा" से (जो इसका मामा था) राज्य लेकर सन् ८१९ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके "साड़जी" हुआ। इसने **कंथकोट** का किला सन् ८४३ ई० में पूर्ण कराया। साड़जी के फूलजी हुआ जिसने ८५५-८८० तक राज्य किया। इसके बाद लाखा फूलाणी हुआ जिसने ८८० से ९७८ तक राज्य किया।

म० म० पं० गौरीशंकरजी ओझा ने लाखा फूलाँणी का समय (जनवरी फरवरी सन १९०४ के "समालोचक" पत्र में) ११वीं शताब्दी लिखा है। उन्होंने अनेक दृढ़ प्रमाणों से

सिद्ध कर दिया है कि यह लाखा फूलाणी विक्रम संवत् १०३६ ई० ९८० में अन्हिलवाड़े की लड़ाई में मूलराज के हाथ से मारा गया* ।

अब देखना यह है कि जेहल लाखा फूलाणी से कितने वर्ष पीछे हुआ तथा लाखा फूलाणी की ख्याति (कीर्त्ति) कैसी थी जिसके वंश में जेहल हुआ था । म० म० श्री गौरी-शंकरजी ओझा से पत्र द्वारा जिज्ञासा की तो ता० ३० दिसंबर सन् २९ तथा ता० ३० मार्च ३१ के पत्रों में उन्होंने अनु-संधान-मय वृत्त लिखे हैं । उनका सार यह है—कच्छ का प्रतापी व महाधनाढ्य राजा खेंगार था जिसने वि० सं० १५६६ से १६४२ तक राज्य किया । खेंगार ने बड़ी संपत्ति इकट्ठी की थी परंतु उसका उपभोग कुछ नहीं किया । खेंगार का पुत्र भारा (भारमल) हुआ था, जिसने १६४२ से १६८८ तक राज्य किया । भारमल ने पिता की संपत्ति का खूब उपभोग किया । इसके संबंध में अब तक यह कहा-वतें चली आती हैं—(१) 'खाटी खंगारे भोगी भारे' (२) 'खाटीराव खंगार भारमल भुगती धरा' । भारमल का

---

* श्री ओझाजी ने अपने संगृहीत लेखों से, अनेक शिलालेखों से, मूल-राज का समय संवत् १०१७-१०५२ सिद्ध किया है । परंतु "मारवाड़ के मूल इतिहास" के पृ० २७ के फुटनोट में पं० रामकरणजी ने सांभर के शिलालेख से मूलराज का समय ९९८ वि० लिखा है जो उसके राज्या-रंभ से भी पूर्व का है । यह स्थल विचारणीय है ।—ह० ना० ।

बड़ा बेटा **जेहल** था जिसको जेहा या जैसल भी कहते हैं। जेहल ने अपने पिता के सामने ही बाबा की अतुलित संपत्ति का भोग प्रारंभ कर दिया और इतना दान किया कि कँवर-पदे में ही विख्यात हो गया परंतु अपने पिता भारमल के सामने ही मर गया और अपना नाम अमर छोड़ गया। इसी जेहल का जस बाँकीदासजी ने इस ग्रंथ (जेहल-जस-जड़ाव) में गाया है। बाँकीदासजी की संगृहीत 'ऐतिहासिक वार्ता संग्रह' हस्त-लिखित पुस्तक की सं० ४६६ में भाटी जैसा को हरबू साँखले का दुहिता लिखा है। कच्छ के जाड़ेचे भाटी (यादव) हैं। इनके पूर्वज संभा कहाते थे जिनका राज्य सिंध में था। ये भी **संभ** कहाते हैं। जेहल के पहले ही मर जाने से भारमल का उत्तराधिकारी उस(भारमल)का छोटा बेटा भोजराज हुआ था। भारमल के पूर्वजों में लाखा, फूल का बेटा, बहुत पहले हुआ था जो बहुत प्रसिद्ध हुआ था। लाखा से सात पीढ़ी पहले ऊनड़ हुआ था। ये इस वंश के बहुत प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं। बादशाहों से भी कच्छ के राजाओं का संबंध अच्छा रहा है। सं० १८७६ ई० के छपे हुए आत्माराम केशव द्विवेदी के बनाए हुए "कच्छदेशनो इतिहास" नामक ग्रंथ में भारमल के विषय में लिखा है कि अकबर बादशाह ने गुजरात अपने अधीन करके मुजफ्फर को गुजरात से निकाल दिया तो उसने बागी होकर बड़ा नुकसान करना प्रारंभ कर

दिया। इस पर उसको पकड़ने के लिये गुजरात का सूबे-दार आजम कोकलताश मुकर्रर हुआ तो उसका इसने पीछा किया तो मुजफ्फर ने जामनगर के जाम सत्ता के यहाँ शरण ली। कोकलताश ने शाही चोर को माँगा। परंतु जाम ने अपने शरणागत को नहीं दिया। इस पर कोकलताश ने कच्छ के राव भारमल (भारा) तथा आसपास के राजाओं से मदद लेकर जाम पर चढ़ाई की और फतह पाई। जहाँ-गीर के समय में भी भारमल का सम्मान होने की बात उक्त पुस्तक में आई है। इससे प्रकट है कि दिल्ली के बाद-शाहों से इस वंश के राजाओं ने मेल जोल अच्छा रखा था*। इति

इसके अतिरिक्त इस वंश का लाखा फूलाणी सबसे अधिक प्रसिद्ध हो गया है। बंदीजनों में वह प्रातःस्मर-णीय है। इसके पँवाड़े, गीत, छंद, दोहे सोरठे प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक इधर जयपुर में प्रसिद्ध है।—"माया माँणी बाँधलाँ कै **लाखै फूलाँणी**। रहती पैती माँण गयो हरगो-विंद नाटाणी।" दातारों के नामोच्चारण में छंद कहे जाते हैं उनमें से कुछ बानगी यों है:—

---

* मुंशी देवीप्रसादजी हिंदी 'जहाँगीरनामे' के पृ० ३२९-३३० और ३३२ पर, सावन संवत् १६७५ में "राव भारा" का बादशाह पास हाजिर होकर नजर करना और उसकी सेवा का हाल लिखा है। उस समय भारा ९० वर्ष का था।—इ० ना०।

"लाखा सरीखा लख गया, अनड़ सरीखा आठ।
हेम हराऊ सारिखा वले न बहसी बाट" ॥ १ ॥

यह अनड़ स्यात् ऊनड़ होगा। हेम हराऊ के बारे में यह दोहा है :—

"लालाँ किया विछाँवणाँ हीराँ बाँधी पाज।
काँटाँ मोती पोइगो हेम गरीबनवाज ॥ १ ॥

(क० मुरारिदानजी से प्राप्त)

हरगोविंद नाटाणी जयपुर का खँडेलवाल महाजन था जिसने महाराजा ईश्वरीसिंहजी को धोखा देकर केशवदास खत्री मुसाहिब को तो जहर पिलवाकर मरवा दिया और आप मुसाहिब हो गया, और राज्य के धन को ऐश-आराम और दातारी में उड़ाकर दातार मशहूर हो गया। और मारके का काम पड़ा तब माधोसिंहजी में मिल गया कि जिससे ईश्वरीसिंहजी को भी विष से आत्म-हत्या करनी पड़ी। यह भारी हरामखोर था तो भी याचकों ने इसके दान की प्रशंसा की। उसी समय का ईश्वरीसिंहजी का यह मर्म-स्पर्शी वाक्य है—

"साँचो तू ईसरा झूँटी या काया।
प्याला केशोदास ने पाया सो पाया" ॥ १ ॥

एक छप्पय में अन्य दातारों के नामों के साथ लाखा फूलाणी का भी नाम आया है, यथा—

"दावराँण उम्मेद दुरद गीताँ रादेतो।
देतो हाडो नाँहि लोल अति महँगा लेतो॥
नहिं बाघो राठोड़ नहीँ शेरो सादाणीँ।
नहिं जाड़ेचो जाम नहीं **लाखो फूलाँणी**॥
दातार इता दीसै नहीं करता रसा परलै किया।
कबीसर अब कीजै किसूँ गीताँरा गाहक गया" ॥१॥

(क० मुरारिदानजी से)

इसका प्रत्युत्तर भी किसी ने (स्यात् बाँकीदासजी ने) दिया—

"अजे भीम आहाड़ाँ अजे सुरजो बीकाणें।
अजे अचल ऊमराँ, जग सारो जस जाणें॥
अजे आतो गोहिलाँ, अजे माधव रिडमालाँ।
अजे मान जोधाँण, पात बैठा सुखपालाँ॥
कुलमोडरमण काँधावताँ, किम जाणें कीरत कली।
नेसती-पणाँ दीसे नहीं अजेऽपि आसत ऊजली" ॥१॥

(क० मुरारिदानजी से)

किसी अन्य कवि की उक्ति बड़े मारके की है जिसमें लाखा की महिमा दरसाई है—

"लाखा पुत्र समुद्र का, फूल घरे अवतार।
पारेवाँ मोती चुगे, लाखारे दरबार" ॥ १ ॥

("समालोचक" पत्र जनवरी १६०४ के से)

"पल्लाँणी हीरे जड़ी, सूरत पच्चाँणी।
पच्छम हिंदे पातशा, लाखो फूलाँणि।" ॥ १ ॥

(उक्त पत्र से)

इस दानवीर लाखे का जन्म वि० सं० ९१२ श्रावण शुक्ला सप्तमी को "सोनल" राणी के गर्भ से हुआ था। इसका पिता **फूल** था जो जाम **भोड़** का पोता था। इस हिसाब से लाखा ने ९१२ से १०३६ तक अर्थात् १२४ वर्ष की उम्र पाई। संभव है कि इतनी बड़ी उम्र में लाखा जीता रहा हो और युद्ध के योग्य रहा हो। यह बात विचारणीय है। यदि लाखा का वि० सं० १०३६ में मारा जाना ठीक है तो, जैसा कि ऊपर जेहल के पिता भारा का जो समय (१६४२ से १६८८) लिखा है, (अनुमान से) जेहल का उसके पीछे, छः सौ से भी बहुत अधिक पीछे, समय आता है। अर्थात् लाखा ११वीं शताब्दी में मरा और जेहल १७वीं शताब्दी में मरा। और अपने पूर्वज लाखा की सी ख्याति अपने दानवीरत्व से पाई। जेहल का अपने पिता के जीवन-काल में मरना प्रसिद्ध है, इससे वह १६८८ के पूर्व ही मरा था। यह निःसंदेह सिद्ध होता है।

लाखा के जन्म और मरण के संबंध में रासमाला के गुजराती अनुवाद में दीवाणभाई "रणछोड़जी" ने, प्रथम भाग के पृ० ५४ तथा पृ० ८३ फुटनोटों में, यही निष्कर्ष निकाला है जो श्री ओझाजी ने "समालोचक" में प्रकाशित किया है।

अर्थात् लाखा सीयाजी के हाथ से नहीं मारा गया था। उसके समय में और सीयाजी के समय में २५० वर्ष से अधिक का अंतर है। लाखा तो **आटकोट** की लड़ाई में मूलराज के हाथ से, सन् ईस्वी ९७९ (संवत् वि० १०३६) में, मारा गया। लाखा तो ई० सं० ८५५ में जनमा था और सन् ९७९ में **सवा सौ वर्ष** १२५ की आयुष्य भोगकर मूलराज के हाथ से ही मारा गया था। सवा सौ वर्ष की आयु का बुड्ढा लाखा युवा अवस्थावाले मूलराज से लड़ा यह भी एक विचित्र ही कथा जानिए। इतने जर्जरीभूत वृद्ध पुरुष को पुरुषार्थी मूलराज ने मारा इसमें उसकी कुछ भी बड़ाई नहीं है।

निदान ऐसे दानवीर युवराज जेहल (जेसल-जेहा) का यश-गान ऐसे महाकवि बाँकीदासजी ने बड़े ओज भरे शब्दों में किया है। इसको ध्यानपूर्वक पढ़ने से भारतवर्ष के क्षत्रियों के दान का माहात्म्य, चारण कवियों की दानियों की प्रशंसा करने की शैली, जेहल और उसके पूर्वजों की उदारता का दिग्दर्शन बहुत ही सुंदर रूप में हमारे सम्मुख हो जाता है। इसके कई एक दोहे और आख्यायिका-मय वाक्य बड़े ही महत्त्व के हैं जिनको पढ़कर पाठक आनंद प्राप्त करेंगे। यहाँ विस्तार-भय से उनका लिखा जाना उचित नहीं समझते हैं।

---

(२) कायरबावनी

इस ग्रंथ में कविराजाजी ने ५४ दोहों में उन अधम, जातिद्रोही, कुलहीन, नमकहराम, कपटी एवं खुशामदी पुरुषों का वर्णन किया है जो अपने स्वामी की झूठी खुशामद कर-करके अपने पेट की आग को शांत करने में तत्पर रहते हैं, और युद्ध अथवा अन्य विपत्ति के समय सर्वप्रथम दुम दबाकर नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। ऐसे निर्लज्जों के लिये बाँकीदासजी के बाँके (तीखे) बाण वास्तव में बड़े तेज और पैने हैं जिनका वार कभी खाली नहीं जाता और वे सीधे ही हृदय पर जाकर लगते हैं। कविराजाजी ने ऐसी बारीक चोजभरी चुटकियाँ ली हैं जिनको सुन-पढ़कर ऐसे पुरुष अवश्य लज्जित होंगे और अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप करेंगे।

ग्रंथ के आरंभ में ईश्वर-स्तुति करके कायर का लक्षण बताया है—

"आग न जागे आँखियाँ, तिणसिर दीधाँ तंत।
पलपल मुख पुलकावणों, कायर ही उचकंत" ॥

आगे कायरों की युद्धादि में अनुपयोगिता और इसी लिये इनका बहिष्कार उपयुक्त समझकर कवि ने कैसा अच्छा कहा है :—

"कंथ म राखो कटक में, नर कायर निरलज्ज।
काळा बळदां काढ़जै, काँकळ जीपण कज्ज" ॥

और कायरों की निरर्थकता कैसे अच्छे शब्दों में बताई है—

"लाखाँ सठ दे लीजिए, पंडित गुण भरपूर।
कायर लाखाँ बेचकर, साहिब! लीजै सूर" ॥

कहीं कहीं उत्तम उपदेश और चोज भरे वचन भी दोहों में आ गए हैं। यथा—

"भेष लियाँ सूँ भगत नँह, ह्वै नँह गहणाँ हूर।
पोथी सूँ पंडित नहीं, ससतर सूँ नँह सूर" ॥
"बादल़ ज्यूँ सुरधनुष बिण, तिलक बिना दुजपूत।
बनो न सोभै मोड़ बिन, घाव बिना रजपूत" ॥

कायरों का उपहास भी खूब किया है। यथा—

"भागल भारथ भीड़ में, बाणी सह बिसरंत।
मुख बापूडो मावडो, भाईडो भाखंत" ॥
"पैलो खोसे पाघडी, हँसे दिखालूँ दंत।
कायर मोनै क्यों कहै, सुद्ध सुभावाँ संत" ॥
"भारथ मत कर भामणी, मो भारथ नँह मेल़।
वापी कूप बताव बिस, कैकर म्हाँसूँ केल़" ॥

इस बावनी में अनेक दोहे **अर्थ**-चमत्कार के हैं। यथा—

"अदताँ केरी अरथ ज्यूँ कायर री किरमाल।
कोउ प्रकारां **कोस** सूँ, नँह पावै नीकाल़" ॥

नोट—यहाँ कोस (कोश) शब्द में श्लेष है सो बड़ी उत्तमता से दोनों ओर अर्थ देता है।

"मंजन करै सधीर मनु, सूराँ साराँ **धार**।
कायरडां मंजन करै, आँसू **धार** मझार" ॥

इसमें भी **धार** शब्द श्लेषार्थ-युक्त यमक से चमत्कृत है।

"कायर थाको दौड़कर, ससि सूँ करै पुकार।
म्रग ज्यूँ मूझ बसावजै, मंडल तँणै मझार" ॥

नोट—इस दोहे की उक्ति में यह चतुराई है कि व्यंग से उस कायर को कलंक बता दिया है। मृग शब्द से दोनों ध्वनियाँ झलकती हैं। एक तो रण से मृग की तरह जल्दी भागना और फिर कलंकी चंद्रमा की शरण में जाकर खुद उसका कलंक बनने की इच्छा प्रकट करना।

यह ग्रंथ बाँकीदासजी ने वि० सं० १८७१ की श्रावण शुक्ला द्वितीया को बनाया था, जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—

"**एकोतरै अठारसै**, श्रावण दुतियक स्वेत।
बाँकै ग्रंथ बनावियो, कायर कुजस निकेत ॥"

(३) झमाल राधिका—सिखनख-वर्णन

यह ग्रंथ राधिकाजी के **सिख-नख**-वर्णन में है अर्थात् राधिकाजी के मस्तक से लगाकर चरणारविंदों के नखों तक का वर्णन बड़ा सुंदरता से अनेक रूपकों में अर्थात् अलंकारों से अलंकृत है। एक तो बाँकीदासजी की चोज और चमत्कार भरी उक्ति फिर छंद भी उन्होंने उपयुक्त लिया है

अर्थात् 'झमाल', जिसमें वर्णन के लिये गुंजायश और भाव निदर्शन के लिये छंद की ढाल सहायक हुए हैं। कवियों में सिखनख वा नखसिख का वर्णन करना एक उत्तम शैली सी है। संस्कृत के कवियों में भी बहुतों ने नखसिख कहे हैं। इसी तरह भाषा में भी संस्कृत का अनुकरण करके इस चाल को निभाया है, और अनेक कवियों ने इसमें नाम पाया है। उर्दू के कवियों ने भी "सरापा" लिखकर अपने अपने काव्यों की छटा को बढ़ाया है। डिंगल भाषा में बाँकीदास-जी के से नख-सिख बहुत कम हैं। बाँकीदासजी के इस प्रकार की कविता करने से डिंगल साहित्य की शोभा बढ़ी है। कवि ने राधिकाजी का सिख-नख कहकर एक कार्य से दो फल पैदा किए हैं। एक तो श्रीराधिकाजी का सर्वांग ध्यान उनके उपासकों के लिये सर्वांग-सुंदरता से बन गया, दूसरे नायिकाभेद में नायिका के सब अंगों की प्रशंसा अनेक उप-माओं और वर्णनों की विभिन्नता से प्रदर्शित हो गई। यों काव्य का एक अंग मनोहरता के साथ इस साहित्य में उप-स्थित हो गया। इस काव्य में अनेक छंद बहुत अच्छे आए हैं, और उनमें अनेक भाव और अनेक वर्णन भी बहुत उत्कृष्ट हैं। ग्रंथ के अंतिम छंदों में युगल स्वरूप का भी वर्णन आया है जो बड़ा सुंदर है, और आशा है कि भक्त पाठकों के मन को आनंद प्रदान करेगा। कवि का वर्णन ऐसा (अनेक छंदों में) पाया जाता है कि उनका हृदय भी प्रेम वा भक्ति

से सराबोर था। सच है बिना ऐसे रंग में रँगे ऐसी उक्तियाँ कैसे पैदा हो सकती हैं।

यह ग्रंथ कवि ने 'झमाल' छंद में लिखा। झमाल छंद डिंगल भाषा का छंद है। इसका लक्षण मंछ कवि रचित 'रघुनाथ रूपक' में दिया है वह विस्तार से पुस्तक के अंतिम छंद के नोट में लिखा गया है। स्पष्ट है कि एक दोहा और एक चंद्रायणा छंद से यह बनता है। दोहे और चंद्रायणे में सिंहावलोकन है, अर्थात् दोहे का अंतिम शब्द चंद्रायणे के आदि में भी आता है।

(४) सुजसछत्तीसी

यह ग्रंथ यशस्वी, वीरों और दातारों की प्रशंसा में और कृपणों और अनुदार पुरुषों की निंदा में है। इसमें ३४ दोहे और चार सोरठे हैं। सोरठे संख्या ६, ७, १० और २२ हैं। इसमें कवि ने सुयशवाले पुरुषों की श्लाघा करके अनुदार पुरुषों की निंदा से यह शिक्षा दी है कि सुकृती, परोपकारी, त्यागी, गुणियों के संमान करनेवाले, यश के प्रेमी, अपना नाम स्थिर रखने की इच्छा करनेवाले, जो पुरुष हैं वे ही संसार में मरने पर भी अमर रहते हैं और इनके विरुद्ध स्वभाववाले कायर, कापुरुष, अनुदार, अदातार पुरुष जीते ही मरे बराबर हैं। न वे संसार को चाहते हैं, और न संसार उन्हें चाहता है। अतः सुकृत के लिये ही उत्तेजना

इस छत्तीसी का परम ध्येय है, और यश-प्राप्ति के लिये रोचक वाक्य और अपयश के त्याग के लिये भयानक वाक्य इस शिक्षाप्रद काव्य में कवि ने बड़ी चातुरी से धरे हैं, जिन्हें समझते ही मन पर बड़ा प्रभाव होता है।

कैसा अच्छा कहा है कि—

"पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन कीधो नहीं।
चित क्यूँ राखै चाह, तिकै सरग पावण तणी" ॥
"कृपणाँ जस भावै कठै, विधि विमुखाँ नूँ वेद।
बाँका भोजन नँह रुचै, ज्याँरै वप ज्वर खेद" ॥
"आलस बालो मंगणाँ, डर मंगणाँ उदार।
बंक उदाराँ विसव में, बालो जस विस्तार" ॥
"मच्छाँरै जल-जीव जिम, सबजी तराँ सदीव।
अदताराँ धन जीव इम, जस दाताराँ जीव" ॥

बाँकीदासजी का यश की महिमा का निश्चय नीचे के दोहे से कैसा अच्छा प्रकट होता है—

"हुवै जेम हर हंस सूँ, बासर कमल विकास।
एम धरम जस ह्वै उभै, दत सूँ बाँकीदास" ॥

अपने इस ग्रंथ के वास्तविक उद्देश्य को यों प्रकट किया है—

"सुदताँ इणनूँ साँभलै, अमी नजर सूँ ईख।
क्रपणाँरो इणमें कुजस, सुजस छतीसी सीख" ॥

कवि ने दृष्टांत के लिये बड़े बड़े दानियों के नाम देकर अपने विषय को प्रकट किया है। यथा—श्रीरामचंद्रजी, सिंध

का ऊनड़, जगदेव परमार, हातिमताई, कच्छभुज का जेहल कुमार और बीर विक्रमादित्य इत्यादि, जिनके नामों से ग्रंथ विभूषित हुआ है। ये लोग जग में प्रातःस्मरणीय हुए हैं वस्तुतः त्यागी का दर्जा ही सबसे ऊपर है और वही अपने त्याग के कारण ही संसार में स्मरण किया जाता है और उसके अनुकरणीय, यशो-धवल सच्चरित्र से जगत् में अन्य पुरुष भी वैसे ही होना चाहते हैं।

(५) संतोषबावनी

५५ दोहे-सोरठों में संतोष की महिमा और असंतोष और लालच की निंदा वर्णन की गई है। संतोषरूपी सुर-तरु का माहात्म्य भारतीय धर्मों में सर्वत्र गाया गया है। यह संतोष शांत और त्यागी, ब्रह्मनिष्ठ, महान् आत्मा पुरुषों के लिये अमृत समान है इसमें तो कहना ही क्या है, परंतु संसारी संग्रह-निरत पुरुषों की भी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा में वृद्धि करनेवाला गुण होता है। बाँकीदासजी ने इस ग्रंथ के मंगलाचरण में ही वस्तु-निर्देश के साथ भगवान् से प्रार्थना की है सो दोहा बड़ा चमत्कारी है। इस ग्रंथ के कई दोहे बड़े अच्छे हैं, जो संतोष-प्रेमी पुरुषों के याद रखने लायक हैं। यथा—

"गह चढियाँ संतोष गज, धर पड ज्याँने धोक।
चढ़ियाँ ज्याँनू चहरजे, लालच गरदभ लोक"॥

"मोल मंगाडे चंद्रमण, दहण सुथंभण दाह।
दाह हिए लालच दहण, जतन न थंभण जाह" ॥
"हेकरती नँह हालियो, सोनो रावण साथ।
लेजावण लोभी करै, आथ साथ असमाथ" ॥
"ज्यांरे खाक बिछावणो, ओढणानूं आकास।
ब्रह्म पोष संतोष वित, पूरण सुख त्यां पास" ॥
"सा पुरुषां संतोषियां, खाणां जवहर खांण।
बेलां चित्रां वेलड़ी, पारस सयल पखांण" ॥

यह ग्रंथ बाँकीदासजी ने फागुन सुदी १३ सं० १८७८ वि० में बनाया था। यथा—

"अट्ठारै सै अठंतरे, मोजी फागण मास।
सुद तेरस संतोषगुण, बरणे बाँकीदास" ॥

---

(६) सिधराव-छत्तीसी

इस सिधराव-छत्तीसी में कविराजा बाँकीदासजी ने अन्हिलवाडा गुजरात देश के परम प्रतापी राजा "सिद्धराज जयसिंह" की शूर-वीरता, विजय, दातारी आदि का यश वर्णन किया है। यह छोटा सा ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें भारतवर्ष के एक महा साहसी और विजयशाली अधिपति की कीर्त्ति का गान है।

सिद्धराज जयसिंह राजा "कर्ण" चालुक्य वा सोलंकी का पुत्र था। इनकी वंश-परंपरा और संवत् रासमाला में इस प्रकार दिए हैं—

नाम	राज्यारोहण	स्वर्गवास
मूलराज	९९८	१०५३
चामुंडराज	१०५३	१०६६
वल्लभसेन	१०६६	१०६६
दुर्लभसेन	१०६६	१०७८
भीमदेव प्रथम	१०७८	११२८
कर्ण	११२८	११५०
सिद्धराज जयसिंह	११५०	११९९

इस सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् प्रसिद्ध **कुमारपाल** राजा हुआ। "कुमारपालचरित" इसी के नाम पर है जो एक अति प्रसिद्ध महाकाव्य है।

इस सिद्धराज जयसिंह के जन्म के बाबत "रासमाला" में इस प्रकार लिखा है—"कर्णदेव के पश्चात् गद्दी का वारिस होनेवाला कोई पुत्र नहीं था, इससे वह प्राय: चिंतित रहता था। एक दिन प्रात:काल कर्णराज दरबार में बैठा हुआ था तब वहाँ एक चित्रकार उपस्थित हुआ। उसने कर्णदेव को कई चित्र दिखाए। उन चित्रों में एक चित्र को—जिसमें एक राजा के आगे लक्ष्मी नृत्य कर रही है और राजा के पास में एक षोडशवर्षीया कन्या बैठी हुई है—देखकर बड़ा प्रसन्न

हुआ और चित्रकार से पूछा कि यह चित्र किसका है। चित्रकार ने कहा कि दक्षिण में चंद्रपुर एक नगर है। वहाँ का राजा जयकेशी है। यह कन्या उसी की पुत्री है। इसका नाम "मीनलदेवी" है। अनेक राजकुमारों ने इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की, किंतु यह कहती है कि जो मुझसे रूप और गुण में अधिक होगा उससे मैं विवाह करूँगी। इसके लिये कई मनुष्यों ने यत्न किए किंतु सफलता प्राप्त नहीं हुई। एक दिन किसी चित्रकार ने आपकी छवि इसे दिखाई, जिसे देखकर यह मोहित हो गई। अपने माता-पिता से कहा कि मेरा विवाह कर्णराज के साथ कर दो। वह आपके विरह में बहुत दुखी हो रही है। उसने मुझे आपके पास गुप्त रूप से भेजा है और जयकेशी की भी इसमें संमति है। यह कहकर उस चित्रकार ने स्वर्ण, रत्न तथा और वस्तुएँ जो जयकेशी ने दी थीं कर्णदेव के आगे रखीं। राजा कर्ण ने उन्हें स्वीकार कर लिया। इसके बाद तुरंत ही मीनलदेवी को ब्याहने के लिये अन्हिलवाडे गए। वहाँ विवाह हो गया। राजा ने उसे पट्टमहिषी स्थापित की। किंतु किसी कारणवश कर्णदेव उसके महलों में नहीं गए। इससे उसे बहुत दुःख हुआ। कुछ समय बाद राजा एक नटी पर मोहित हो गया। राजा ने उससे एकांत में मिलने का वादा कर लिया। यह बात राजा की माता और मंत्री मुंजल को ज्ञात हुई, तो उन्होंने कपट से नटी के स्थान पर

मीनलदेवी को वहाँ भेज दिया। वहाँ से राणी सगर्भा लौटी और लौटते समय युक्ति से राजा से राज-मुद्रा ले आई। राजा को कुछ भी हाल मालूम नहीं हुआ। अंत में इसका राजा ने पश्चात्ताप बहुत किया, और प्रायश्चित्त करने को सात तप्त पुत्तलियों से आलिंगन करना चाहा किंतु प्रधान के भेद खोलने पर राजा को शांति मिली। इस गर्भ से प्रतापी सिद्धराज जयसिंह का जन्म हुआ।"

कुछ वर्षों के बाद राजा कर्ण का स्वर्गवास हो गया। इस समय सिद्धराज बहुत छोटा था। राज्य का कार्य कर्ण की माता "उदयमती" के भाई मदनपाल के हाथ में चला गया। यह बड़ा दुष्ट था। अतः "सीतू" नामक प्रधान ने बालकराजा को वश में करके मदनपाल को उसी के आदमियों द्वारा मरवा दिया। इसके बाद सब राजसत्ता मीनलदेवी के हाथ में आ गई। मदनपाल के समय में सिद्धराज ने समुद्र तक त्रिभुवनपाल की सहायता से—जो कर्ण के भाई क्षेमराज का पौत्र था—विजय प्राप्त की। अपनी माता के साथ सोमेश्वर की यात्रा करने को कुछ वर्षों पीछे गया तो पीछे से मालवे के राजा यशोवर्मा ने इसके राज्य पर चढ़ाई की। लौटने पर एक तालाब (जिसका नाम सहस्रलिंग था) का काम पूर्ण कराके इसने थोड़े समय पीछे यशोवर्मा पर चढ़ाई की और उसको बंदी करके ले आया। यह लड़ाई बारह वर्ष तक चली थी, जिसके अंत में यह विजय प्राप्त

हुई थी। सिद्धराज ने एक यह काम बड़ा पुण्य का किया था कि जो लुटेरे यात्रियों को लूट लिया करते थे उन सबको मारकर साफ कर, यात्रियों का दुःख निवारण कर दिया। और भी अनेक पुण्य-कार्य इसने किए। मूलराज के बनाए पुराने जीर्ण शिवालयों, रुद्र महाकाल आदि के मंदिरों के जीर्णोद्धार किए और रुद्र महाकाल के पुजारियों को कष्ट देनेवाले बर्बर लोगों को जीतकर अपने वश में किया। इसके पश्चात् सोरठ जूनागढ़ के राजा 'खेंगार' को युद्ध में मारा; क्योंकि इसने किसी कुम्हार के घर पाली हुई 'राणकदेवी' नामक कन्या से जबरदस्ती विवाह कर लिया था। इस राणक-देवी का विवाह सिद्धराज जयसिंह से होनेवाला था। सिद्ध-राज जयसिंह ने सोरठ, कच्छ उत्तर में अचलेश्वर, चंद्रावती से आबू तक पूर्व में मालवा और दक्षिण में यहाँ तक विजय प्राप्त कर अपनी अधीनता में स्थापित कर दी थी कि कोल्हापुर का राज्य भी उससे भयभीत रहने लगा।

सिद्धराज की माता भी बड़ी धर्मात्मा थी। पुत्र भी वैसा ही पुण्यात्मा था। बड़े बड़े धर्म और पुण्य के काम किए। अनेक कुएँ, बावड़ी, तालाब, मंदिर बनाए। ब्राह्मणों की बहुत रक्षा की और दानादि भी दिए। इससे इसकी बहुत ही प्रशस्ति हुई। ''मानसरोवर'' तालाब, जिसका नामोल्लेख इस ग्रंथ के मंगलाचरण में आया है, इसकी माता का बनाया हुआ है।

चोहाँण पृथीराज द्वितीय का उत्तराधिकारी सोमेश्वर सिद्धराज जयसिंह का दोहिता था क्योंकि सिद्धराज की पुत्री कांचनदेवी अर्णोराज को ब्याही थी और उसने अपने नाना सिद्धराज ही से शिक्षा पाई थी।

(भारत के प्राचीन राजवंश—रेऊ का—१ भाग, पृ० २४६ तथा पृ० २४०)

रासमाला गुजराती (पृ० १५४) में लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह ने महाराष्ट्र, तिलंग, करणाटक, पांड्य आदि राज्य अपने वश में किए थे। इन विजयों के विषय में आगे चलकर म० म० ओझा श्री गौरीशंकरजी की तहकीकात का सार, उनके प्रकाशित कराए हुए निबंध "सिद्धराज जयसिंह" पर से खींचकर पाठकों के विनोदार्थ हम देते हैं। उससे उस पराक्रमी राजा के संबंध में अनेक आवश्यक और उत्तम बातें ज्ञात हो जायँगी। जिनको विस्तार से जानना हो वे उक्त पुस्तक को वा फार्वस साहिब की रासमाला वा गुजरात के अन्य इतिहास अवलोकन करने का श्रम उठावें।

सिद्धराज जयसिंह के संबंध में ओझा गौरीशंकरजी से हमने पूछा तो उन्होंने कृपा करके अपनी रची हुई पुस्तिका "(१) सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज)" भेजी, जो "नागरीप्रचारिणी पत्रिका" में भी उन्होंने प्रकाशित कराई थी। इस लेख में प्रसिद्ध ओझाजी ने बड़ी तलाश और ढूँढ़ से सिद्धराज का वृत्तांत लिखा है। इससे बड़ी ही सहायता

मिली और बहुत से भ्रम निवारण हो गए तदर्थ हम उनके बहुत ही कृतज्ञ होते हैं। उपरोक्त हमारे लेख और इस पुस्तिका को मिलाकर, बाँकीदासजी के "सिद्धरावछतीसी" के अंदर आई हुई बातों के अभिप्राय को स्पष्ट करनेवाली वा बताने में सहायक बातों को भी हम यहाँ उल्लिखित कर देते हैं—(१) जयसिंह (सिद्धराज) के विरुद (वा उपनाम गुणप्रकाशक अभिधेय) ये हैं—'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक', 'त्रिभुवनगंड', 'बरबरकजिष्णु', 'अवंतीनाथ', 'सिद्धचक्रवर्ती' और 'सिद्धराज'। (२) जयसिंह तीन वर्ष का था तभी उसका पिता कर्णदेव मर गया था। इस हिसाब से जयसिंह का जन्म-संवत् विक्रमी ११४७ होता है; क्योंकि जयसिंह का राज्य पाना सं० ११५० का लिखा है। (३) जयसिंह ने धारानगरी (उज्जैन) के परमार राजा यशोवर्मा को विजय कर अपने यहाँ कैद रखा और यह युद्ध १२ वर्ष रहा सो नरवर्मा के समय में तो प्रारंभ हुआ और यशोवर्मा के समय में अंत हुआ। (४) फिर मालवे का कुछ राज्य सिद्धराज ने यशोवर्मा को लौटा दिया। (५) जयसिंह सिद्धराज ने मालवे की लड़ाई में वीरता दिखानेवाले शूरवीरों को बहुत सा पुरस्कार दिया और उनमें सर्वश्रेष्ठ वीर 'नाडोल' के चौहान राजा आसाराज को स्वर्ण का कलश प्रदान किया था। (६) सिद्धराज का, इस विजय से ही, चित्तौड़ के किले तथा निकट प्रदेशों पर भी अधिकार हो

गया था। (७) मालवा-विजय का संवत् ११९१ और ११९५ के बीच का प्रतीत होता है। (८) अर्णोराज (अजमेरवाले चौहान) से युद्ध करने में जब सुलह हुई तब सिद्धराज ने अपनी पुत्री कांचनदेवी को उसे व्याह दिया जिससे सोमेश्वर पैदा हुआ। (९) सिंध देश के प्रतापी राजा को सिद्धराज जीतकर बाँध लाया था। (१०) महोबे के राजा 'मदनपाल' पर सिद्धराज ने चढ़ाई की थी। (११) सिद्धराज ने बरबरक* को जीता था। (१२) 'सिद्धराज' नाम इसलिये प्रसिद्ध हुआ कि उसने श्मशान में बैठकर मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी और उसके बल से हरएक बात में सफलता प्राप्त कर लेता था। इससे यह जादूगर भी मशहूर हो गया था। इस संबंध में (कुमारपाल-प्रबंध के अनुसार) एक रोचक कथा है—"जयसिंह का सिद्ध-चक्रवर्ती खिताब होना सुनकर हिमालय से उसकी सिद्धि की जाँच करने की इच्छा से योगिनियाँ उसकी सभा में आईं और उससे बोलीं कि हम तुम्हारी सिद्धियाँ देखने आई हैं। यह सुनकर राजा ने पहिले उनका आतिथ्य किया फिर एक दिन उनके समक्ष चमत्कार दिखलाने की इच्छा से वह एक चमकती हुई तलवार को मूँठ पर्यंत खा गया। वह तलवार बड़ी चतुराई से खाँड़ (शक्कर) की बनाई हुई थी, केवल उसकी मूँठ लोहे

* बरबरक—अरब देश के जंगली म्लेच्छों का राजा। "बाबरा भांड" शब्द यहीं से चला है।

की थी। इसके पीछे उसके मंत्री सांतू ने योगिनियों को बची हुई तलवार और मूठ खाने को कहा। परंतु उनसे कब खाई जा सकती थी ? इसलिये उन्होंने कहा कि राजेंद्र ! आप अपूर्व शक्ति को धारण करनेवाले हैं और 'सिद्धचक्रवर्ती' कहलाए जाने के सर्वथा योग्य हैं।"

(सिद्धराज) जयसिंह के अनेक चमत्कार देखकर अजान लोगों ने ही उसके वश में भूतों का आना मान लिया हो ऐसा नहीं है, किंतु कई विद्वान् लेखकों ने भी इसको सच माना है ऐसा पाया जाता है—१. सोमेश्वर 'कीर्त्तिकौमुदी' में लिखता है कि जयसिंह भूतों के स्वामी बरबरक को अधीन कर **सिद्धराज** कहलाया। २. अरिसिंह 'सुकृत-संकीर्त्तन' में लिखता है कि जयसिंह बरबरक के कंधे पर बैठकर आकाश में फिरता था। ३. हेमचंद्र आदिकों ने भी उसकी सिद्धियों को माना है, यथा "द्व्याश्रयकाव्य" में आया है कि रत्नचूड़ नाग के पुत्र कनकचूड़ के सहायतार्थ जयसिंह ने वज्रमुख जाति की मक्खियों से भरे अँधेरे कुएँ में (जिसमें प्रवेश से मृत्यु हो जाती थी) प्रवेश कर कुएँ की खारी मिट्टी लाकर दी थी। (१३) जयसिंह (सिद्धराज) ने दक्षिण में कल्याण के सोलंकी राजा **'परमर्द्दि'** (विक्रमादित्य छठा) पर (उससे लड़कर) विजय पाई थी। (१४) 'कीर्त्तिकौमुदी' में सिद्धराज का **गौड़ देश** पर चढ़ना भी लिखा है। (१५) जयसिंह सिद्धराज की उदारता, धर्म-

परायणता, पराक्रम आदि गुणों के कारण उसकी प्रजा उसको बहुत चाहती थी और उसका गुजरात आदि देशों में सिधरा ऐसा अद्यापि नाम प्रसिद्ध है। (१६) वह कट्टर शैव था, तो भी वह दूसरे धर्मों की ओर उदारता दिखाता और उनका आदर रखता था। लाखों रुपए देकर अनेक जैन-मंदिर बनवा दिए। (१७) सिद्धराज रात्रि को घूम-फिरकर लोगों की सच्ची दशा जाना करता था, फिर उनको बुलाकर उनके सुख-दु:ख के सारे हालात कह देता था। इन बातों से भी लोगों को विश्वास हो गया था कि वह किसी देवता का अवतार है।

(१८) फारसी पुस्तक 'जामे-उल-हिकायात' में लिखा है—कि खंभात नगर में अग्निपूजकों ने सुन्नी मुसलमानों की मसजिद जला दी। उसका झगड़ा होने पर ८० मुसलमान मारे गए। उसकी फर्याद जयसिंह के पास पहुँचने पर वह गुप्त रूप से खंभात पहुँचा और वहाँ सब सच्ची बातें जानकर लौटा। और तहकीकात करके अग्निपूजकों को दंड दिया। (१९) जयसिंह विद्याप्रेमी और गुणग्राही था। उसके समय में अनेक नामी नामी विद्वान् हुए और उन्होंने ग्रंथ लिखे। यथा हेमचंद्र सूरि ने बहुत से ग्रंथ रचे और उनमें से एक का काम सिद्धराज की यादगार में "सिद्ध हैम व्याकरण' रखा था। [नोट—हेमचंद्र के ग्रंथों की सूची विद्वानों को ज्ञात ही है। और रासमाला (गुजराती) में भी सूची दी है। वहाँ देखें]—श्रीपाल नाम पंडित ने, जो जयसिंह

सिद्धराज का दरबारी कवि था, 'बीरोचन पराजय' बनाया, तथा दुर्लभराज ने मेरु प्रशस्ति, बडनगर की प्रशस्ति, सहस्रलिंग की प्रशस्ति बनाई। वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालंकार'। जयमंगलाचार्य ने 'जयमंगला शिक्षा'। गोविंदसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न-महोदधि'। सागरचंद्र ने सिद्धराज की प्रशंसा में एक काव्य लिखा था। (२०) सिद्धराज जयसिंह विद्वानों की सभा कराता और उनके द्वारा धर्म सुनता और भिन्न भिन्न मतावलंबियों में परस्पर शास्त्रार्थ भी करवाता था।

(२१) जयसिंह ने कितने ही पुण्य के कार्य किए हैं। इसने अनहिलवाड़े में कीर्तिस्तंभ, सहस्रलिंग सरोवर, सत्रशाला मठ तथा दशावतार का मंदिर बनवाया। सिद्धपुर में रुद्रमहालय (रुद्रमहाकाल) का मंदिर तथा एक जिन-मंदिर भी बनवाया। उज्जयंत पर्वत पर नेमीश्वर के लकड़ी के बने हुए मंदिर के स्थान पर सौरठ देश के तीन वर्ष की आय से पाषाण का मंदिर बनवाया।

(२२) जयसिंह सिद्धराज के समय में 'अबू अब्दुल्ला महमूद' ने—जो 'अल्-इँद्रसी' नाम से प्रसिद्ध था—'नजहतुल् मुश्ताक' नामक भूगोल-संबंधी पुस्तक फारसी भाषा में लिखी। उसमें वह अनहिलवाड़े के विषय में लिखता है—**'नहरवाले** का स्वामी बड़ा राजा है उसे 'बलहरा' कहते हैं। उसके पास बड़ी सेना और हाथी हैं। वह बुद्ध की मूर्त्ति को पूजता और सिर पर सोने का मुकुट धारण करता है। वह बहुधा घोड़े

पर सवार होता और एक बार बाहर जरूर जाता है। उसकी अरदली में १०० औरतें रहती हैं, जिनकी पोशाक कीमती, हाथ-पैर में सोने-चाँदी के कड़े और केश घुँघराले होते हैं। यह औरतें राजा के सामने कई प्रकार के खेल करती और कृत्रिम लड़ाई लड़ती चलती हैं। मंत्री तथा सेनापति केवल उसी समय राजा के साथ रहते हैं जब वह किसी बागी से लड़ने जाता या अपने राज्य पर आक्रमण करनेवाले पड़ोसी राजा को भगाने के लिये चढ़ाई करता है।...नहरवाले व्यापारियों का रक्षण और सम्मान करते हैं और चावल, दाल, सेम की फली, मांस, मछली या मरे हुए जानवर खाते हैं और किसी पशु-पक्षी या जानवरों को मारते नहीं हैं।' (नोट—'नहरवाला' शब्द "अनहलवाड़ा का अपभ्रंश रूप है। और 'बलहरा' शब्द "वल्लभराज" का भ्रष्ट रूप है जो शब्द राठोड़ों के लिये मुसलमान ऐतिहासिक पुरुषों ने प्रयुक्त किया, और फिर यही शब्द बलवान् और प्रतापी राजा के साथ प्रायः लोगों ने लगाया।) (२३) सिद्धराज जयसिंह को अनेक उपाय, दान-पुण्य, अनुष्ठान, साधन करने पर भी कोई पुत्र नहीं हुआ। प्रत्युत शिव की, ध्यान में, उसको यह आज्ञा हुई कि उसके पुत्र नहीं होगा। अपितु उसके पीछे उसके चचेरे भाई कुमारपाल को राज्य मिलना बदा है। इस पर उसने कुमारपाल के पिता क्षेत्रपाल को मार डाला तब कुमारपाल प्राण बचाकर भागा और उसके (सिद्धराज के)

मरने पर कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हो गया। (२४) 'प्रबंध-चिंतामणि' ग्रंथ में सिद्धराज का मरना वि० सं० ११९९ की मिती कातिक सुदी ३ का लिखा है।

(२४) सिद्धराज जयसिंह का वृत्तांत नीचे लिखे ग्रंथों में उल्लिखित है—(क) हेमचंद्र का 'द्व्याश्रय महाकाव्य'। (ख) जिन मंडन कवि का 'कुमारपाल-प्रबंध'। (ग) जयसिंह सूरि (वा चारित्र सुंदर गणि) का 'कुमारपाल-चरित्र'।(घ) सोमेश्वर के 'कीर्त्ति-कौमुदी' और 'सुरथोत्सव'। (ङ) अरि-सिंह कृत 'सुकृत-संकीर्त्तन'। (च) मेरुतुंग-रचित 'प्रबंध-चिंतामणि'। (छ) राजशेखर सूरि रचित 'चतुर्विंशति-प्रबंध'। (ज) फार्वस साहिब का रचा 'रासमाला' तथा उसका गुजराती अनुवाद। (झ) गुजरात का इतिहास। (ञ) इलियट डासन साहिब की भारत की हिस्ट्री। (ट) दो फारसी पुस्तकों का ऊपर उल्लेख हो ही चुका है। (ठ) भाट चारणों की ख्यातें और छंद रचनाएँ। (ड) इनके अतिरिक्त गुजराती रासमाला में—'पट्टावली', 'अर्ली गुजरात' (Early Gujrat) आदि और (ढ) 'सोमप्रभ सूरि रचित 'कुमारपाल-प्रतिबोध' भी। अनेक ग्रंथों के प्रमाण पादटीपों में दिए हैं जिनके नामों को लिखना यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है।

सिद्धराज जयसिंह के समय के अब तक चार शिलालेख मिले हैं—(१) भद्रावती का वि० सं० ११९५ का मि० आषाढ़ सुदी १० का।

(२) उज्जैन से प्राप्त वि० सं० ११९५, जेठ कृष्णा १४ का।

(३) दोहद गाँव से प्राप्त वि० सं० ११९६ का।

(४) तलवाडा गाँव (इ० बाँसवाड़ा) का गणेश की मूर्त्ति के नीचे खुदा हुआ—संवत् पढ़ा नहीं जाता है।

गुजराती रासमाला (चतुर्थ संस्करण, पृ० ४३) में लिखा है कि "मूलराज के क्रमानुयायी जितने राजा हुए उनकी टीप एक ताम्रपट के ऊपर है जो अहमदाबाद के भंडार में जड़ा हुआ है और यह १२६६ का है।" इसमें संस्कृत में मूलराज, चामुंडराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, कर्ण-देव, जयसिंह सिद्धराज, कुमारपाल, अजयपाल, मूलराज दूसरा, भीमदेव, त्रिभुवनपाल पर संस्कृत पंक्तियाँ हैं जिनमें इन राजाओं के विरुद वा उपनाम वा गुणप्रकाशक विशेषण हैं। इसमें सिद्धराज जयसिंह के संबंध की यह पंक्ति है—

"पादानुध्यात - परमेश्वर-परमभट्टारक - महाराजाधिराज-अवंतीनाथ-त्रिभुवनगंड - बरबरकजिष्णु - सिद्धचक्रवर्ति-श्री जय-सिंहदेव"।

यह पंक्ति ही उपरोक्त ओझाजी के लिखे सिद्धराज की उपाधियों का आधार प्रतीत होती है।

सिद्धराज जयसिंह की विजयों के संबंध का एक श्लोक "कुमारपालचरित्र" के सर्ग १ के वर्ग २ में यह है—

"कर्णाट-लाट-मगधांग-कलिंग-बंग-
काश्मीर-कीर-मरु-मालव-सिंधुमुख्यान्।

देशान् विजित्य तरणिप्रमितैः सवर्षैः

सिद्धाधिपो निजपुरं पुनरास्ससाद" ॥ ३८ ॥

अर्थ—करणाटक देश, लाट देश, मगध (विहार) देश, अंग देश (उड़ीसा), कलिंग देश, बंग (बंगाल) देश, कशमीर देश, कीर देश, मरु देश (मारवाड़ आदि), मालव देश (मालवा), सिंधु देश (सिंध) आदि को १२ वर्ष में जीतकर सिद्धराज (जयसिंह) अपने नगर (अन्हिलवाड़े पाटण) को लौटा।

परंतु इसको ओझाजी ने अत्युक्ति बताई है और कल्पना मात्र ही ठानी है, क्योंकि जयसिंह को बारह वर्ष तक मालवा जीतने में ही लगे थे। संभव है कि कवि ने सिद्धराज की विजयों की परिगणना ही की हो, कुछ बारह वर्ष पर्यंत मालवे से लड़ने को न कहा हो।

"चतुर्विंशति-प्रबंध" राजशेखर सूरि के रचे में 'मदन-वर्म-प्रबंध' में लिखा है कि—सिद्धराज ने महाराष्ट्र, तिलंग, करणाटक, पांड्य, आदि राज्य अपने वश में किए थे, जैसा कि हमने ऊपर दरसाया है।

इन विजयों का संकेत बाँकीदासजी ने कई छंदों में किया है, यथा—

(१) छंद ८ में—**कोकन** सिरया कटक।

,, ९ ,,—दे **कोकन** तज दाप।

,, १२ ,,—सात देश **कोकन** लिया।

(२) छंद १० में—गाजै **जादव देवगिर** लीधो करन सुजाव।

,, ११ ,,—भूपत **जादव** भाँण। गांजे तू सो **देवगिर**।

(३) ,, १३ में—ले लच्छी **मरहट्ट** री।

,, १४ ,,—**मरहट्टी** गहिलाव। कुच आधा...।

(४) ,, १५ ,,—**द्रविड़** कियो दहबाट तैं।

(५) ,, १६ ,,—**आंध्र** करे दहबट्ट।

(६) ,, १७ ,,—**लांठै** लूटलियांह, कांठै नदी **कवेरजा**।

(नोट—यह केरल और पांड्य देशों की बात है)

(७) छंद २१ में—अडरं **मलयगिर** आवियो।

(नोट—यह दक्षिण देश के देशों की बात है जहां चंदन के वृक्ष बहुत हैं।)

(८) छंद २७ में—सेखसैण आगे अरज **केरलनाथ** करंत।

(९) ,, ३१ ,,—राजा **सिंघलदीप** रे तोनूं दीघ त्रसींग।

(१०) ,, ३२ ,,—**सिंघल सिंध** जियांह।

(११) ,, ३३, ३४ में—**भीमा**, धुनी पयस्विनी **गोदावरी** गहीर। इत्यादि।

(नोट—इन दक्षिण की नदियों के नामों से उनके बीच वा पास के आंध्र, महाराष्ट्र, कोल, केरल आदि देशों के विजय की बात प्रकट होती है।)

(१२) छंद ३७—में जीतो तू जैसिंगदे **दिषणतणां सै देश**।

उपरोक्त प्रमाणादि से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि बाँकीदासजी का यह ग्रंथ, ऐतिहासिक और वास्तविक घटनाओं के आधार पर भारतवर्ष के एक परम पराक्रमी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ राजा का वृत्तांत रूप है, और जो कुछ प्रशंसा उसकी कवि ने की है उसमें कोई ऐसी अत्युक्ति वा कल्पना नहीं है जो इतिहास के ग्रंथों वा आधारों से विरुद्ध हो। भारतवर्ष के इतिहास में सिद्धराज, मूलराज, कुमारपाल आदि सोलंकी राजा "त्रिविधवीर" (सूरवीर वा युद्धवीर, दानवीर और धर्मवीर) हुए हैं, और उनकी कीर्त्ति उनके उच्च गुणों की सच्ची कौमुदी है। इस प्रामाण्यता को देखते हुए महाकवि बाँकीदासजी का यह ग्रंथ डिंगल भाषा ही में नहीं भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक बहुमूल्य रत्न कहा जाने के योग्य है, और इससे कवि की जानकारी, इतिहासज्ञता और वीरभक्ति का पूर्ण परिचय होता है। अत: बाँकीदासजी के ग्रंथों का प्रकाशन निष्फल नहीं है, अपितु परम लाभदायक और आवश्यक है। इस प्रकार इन अमितगुणपूरित ग्रंथों की रक्षा और प्रचार होने में कुछ हानि नहीं है। और इस ग्रंथमाला के संस्थापक और प्रचालकों का परिश्रम, द्रव्य और कार्य्य निरर्थक नहीं हुआ है।

(७) वचनविवेकपच्चीसी

इस ग्रंथ में २८ दोहों में बाँकीदासजी ने अशुभ, अश्लील और असभ्य वाणी की निंदा और शुभ, सभ्य और मिष्ट

वाणी की प्रशंसा की है और इन दोनों के व्यवहार करनेवालों के हानि-लाभ और गुणावगुण वर्णन किए हैं। यथा—

"जीकारो अमृत ज्युहीं, भावै जगनूं भाळ।
है रैकारो आक पय, गरळ बराबर गाळ" ॥
"बाँका विषफल नीपजै, ज्यूं विष तररी डाळ।
यूँ दुरजणरी जीभडी, रैकारो कै गाळ" ॥

इसी तरह के कई छंद इस ग्रंथ में बहुत ही अच्छे हैं। देखिए यह दोहा क्या ही अच्छा कहा है—

"पारख कीधी पंडिता, सरब मिले संताह।
ज्याँरे जीभ भलाइयाँ, त्याँरे भाग भलांह" ॥

और भी देखिए—

"सज्जन बाँधै पाळ सिर, सीसां छकियां गाल।
दुरजन फौडै गाल दे, प्रीत सरोवर पाल" ॥

अर्थात् जिस प्रेम के सरोवर को सज्जन अपना सर्वस्व लगाकर भी बाँध देते हैं जैसे सीसा-गाल-तळी का तालाब दृढ़ होता है वैसे ही उनका प्रेम-सरोवर दृढ़ होता है। परंतु उसको भी दुष्ट लोग एक गाळी से फोड़ देते हैं।

यहाँ **पाळ** और **गाल** शब्दों में श्लेष स्पष्ट है।

नीचे लिखी लोकोक्तियाँ तत्तत् दोहों में मनोरंजनकारी भासित होती हैं। शिक्षा के वाक्यों में इस प्रकार की लोकोक्तियों के आने की शैली उनके प्रभाव और बल को बढ़ा

देती है। यह कवि के लोकानुभव, साहित्यानुभव और भाषा की जानकारी का प्रमाण है। बाँकीदासजी बहुत ही अनुभवी पुरुष थे। अनेक शास्त्रों का गहन अभ्यास किया था। कई भाषाएँ जानते थे और संसार की देख-भाल तथा प्रकृति का पर्यवेक्षण करने में विलक्षण बुद्धि और योग्यता रखते थे। फिर, निज अनुभव से नीति और उपदेश को ऐसी स्पष्ट कविता में भर देते थे कि जिससे पढ़ने-सुननेवाले को सुगमता से उसका लाभ हो जाय।—

(१) "जग में नर हलका जिकै, बोलै हलका बोल"।

(२) "पैंड पैंड त्याँरा पिसँण, ज्याँरा कड़वा बैंण"।

(३) "यूँ दुरजणरी जीभड़ो, दैकारो कै गाल़"।

(४) "गरल़ बराबर गाल़"।

(५) "गाल़ न ऊठै गूमड़ी"।

(६) "गाल़ लुगायाँ गावही, नरमुख उचत न गाल़"।

(७) "करणघाव पर-कालजे जीभ प्रतख जम-दाढ़"।

(८) "जीकारो दो जगत नूँ, रैकारो मत राख"।

(९) "**बाँका** मीठे बोलणाँ, नाणाँ खरच न होय"।

(१०) "ज्याँरे जीभ भलाइयाँ, त्याँरे भाग भलाहँ"।

(११) "कुवचन मुख कहणों नँही, सुवचन कहणों सुद्ध।"

इस प्रकार और भी उक्तियाँ हैं, परंतु विस्तार अनावश्यक है।

(८) कृपणपच्चीसी

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह ग्रंथ कृपण (अदातार, कंजूस, सूम, धनलोभी) की निंदा में है। "बाँकीदास-ग्रंथावली" के दूसरे भाग में "कृपणदर्पण" ग्रंथ आया है। उसी के जोड़े वा विषय का यह भी है। इसमें और उसमें कुछ भिन्नता भी है, कुछ साम्य भी। प्रश्न यह होता है कि यदि कृपण-दर्पण पहिले बन गया था तो इसकी रचना की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर यह हो सकता है कि कवि ने उसको अलम् नहीं समझा अथवा किसी अन्य स्थल वा अवसर पर इसके छंदों की रचना कर डाली। यह भी संभव है कि यह कवि ने किसी प्रयोजन वा आवश्यकता से संग्रह कर दिया हो। यह भी असंभव नहीं है कि बाँकीदासजी की सहायता से उनके किसी भ्राता या शिष्य ने रच दिया या संग्रह कर दिया हो। क्योंकि इसमें स्वतंत्र कविता के साथ ही अन्य कवियों (ईसरदासजी आदि) के वाक्य भी हैं। यथा—

"अंगण मंगण आवियाँ उत्तर बेगो अप्प।
ऐज महाध्रम आतमा ऐ तीरथ ऐ तप्प"॥

१३। कृपणपच्चीसी।

"रहो बीन रे रामरस अनरथ घणों अलंत।
यहिज है ध्रम आतमा ऐतीरथ औ तंत"॥

१९। कृपणपच्चीसी

"रहै बलु भ्यो रामरस अनरस गणै अलप्प ।
एह महाध्रम आतमा ऐ तीरथ औ तप्प" ॥
३१। हरिरस ईसरदास कृत ।

"दरब किसी उपमा दियाँ तोसूँ है सहकोय ।
तो सारीखो तुहिज तूँ अवर न दूजो कोय" ॥
१४ । कृपणपच्चीसी ।

"देव किसी उपमा दिवां ते सरज्यां सह कोय ।
तूझ सरीखो तुहिज तू अवर न दूजो कोय" ॥
१४। हरिरस ।

"सोना हंदी लंक सुण जग तरसे सहजीव ।
जगतपंथ कोयन गिणै गत थारी हयग्रीव" ।
१५ । कृपणपच्चीसी ।

"क्रम अकरम विकरम करै तेजगवीया जीव ।
जगपति को जाणें नहीं गत थारी हयग्रीव" ॥
११। हरिरस ।

"करूँ अरज कमलालया त्यागो बार न लुज्ज ।
जिण दिन औ जग छाडस्यां तिणदिन तोसू कज्ज" ॥
१६। कृपणपच्चीसी ।

"नारायण हूँतो न भू इण कारण हरि आज ।
जिण दिन आजग छंडणो तिण दिन तोसूँ काज" ॥
१६। हरिरस ।

दोहा १६ अवतारचरित्र के दोहे की छाया है और २१वाँ पीपाजी की वांणी का है।

इस प्रकार बाँकीदासजी ने महात्मा ईश्वरदासजी के हरिरस का भी अनुकरण ही किया है। परंतु उन उच्च कोटि के भक्ति भरे वाक्यों की झलक इस सूम-सक्कड़ी कविता में लाना भी क्या औचित्य का आदर पा सकता है। अस्तु। फिर भी इस ग्रंथ के दोहे "कृपणदर्पण" के दोहों से नए और चुटीले भावों के हैं और कवि ने प्रयोजन ही से पृथक् ग्रंथ का निर्माण किया है। संपादकों को इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिली थीं—(१) कविया मुरारिदानजी अयाचक जयपुरवालों की, (२) दूसरी जोधपुर के सीतारामजी लालस की भेजी। इस दूसरी प्रति में अशुद्धियाँ मिलीं। उनको प्रथम से मिलाकर तथा संपादकों ने अपनी बुद्धिमानी तथा कविवर हिंगलाजदानजी की सहायता से यथासंभव शुद्ध किया है। पाठांतर भी यथास्थान दिए हैं। दोहा सं० १, ३, ७, ११, १७, २६ और २६ ऐसे हैं जिनके संशोधन में विशेष ऊहापोह करनी पड़ी है। कोई कोई दोहा ऐसा भी है कि मानों किसी अन्य की रचना हो। परंतु यह सारी कठिनाइयाँ उस समय मिटेंगी जब बाँकीदासजी के घर में की प्रति निकल आवेगी।

(६) हमरोटछत्तीसी

इस "हमरोटछत्तीसी" में **"उमरकोट"** की संक्षिप्त हकीकत, प्रशंसा और तवारीखी बात है और वहाँ के जल-

वायु, मनुष्यों और स्त्रियों की प्रशंसा है। ज्ञात ऐसा होता है कि बाँकीदासजी उमरकोट गए हैं क्योंकि कई बातें आखों देखी-सी वर्णित हैं। हमरोट = हमीरकोट। हमीर को उमर भी कहते हैं। अत: उमरकोट = हमीरकोट = हमरोट। अर्थात् हमीरकोट का **हमरोट** अपभ्रंश रूप है। यह **उमरकोट** (जिसको कहीं कहीं अमीरकोट भी अँगरेजी पुस्तकों में लिखा है) इस समय सिंध सूबे के **थरपैकर** जिले का एक प्रधान नगर है। पुराने समय में सिंध की राजधानी टट्टा (या तत्ता) था। इस समय सिंध में कराची शहर सबसे बड़ा है और कलक्टरेट का स्थान है। उमरकोट आजकल के भौगोलिक नक़शों में नहीं दिखाया जाता है परंतु ऐतिहासिक* वा प्राचीन संस्थिति के नकशों में दिखाया जाता है। अब इसकी आबादी करीब ५००० मनुष्यों के रह गई है। किसी जमाने में खूब बस्ती का था। यह नगर २५ कला २१ अंश उत्तर-अक्षांश और ६९ कला ४६ अंश पूर्वदेशांतर पर स्थित है। कोई कोई इसको अमरकोट लिखते हैं सो गलत है। हमरोट शब्द भी डिंगल का रूपांतर मात्र ही प्रतीत होता है। बादशाह अकबर का यहाँ

---

* नोट—Historical Atlas by Charles Joppen (ऐतिहासिक एटलस चार्ल्स जोप्पन कृत) और इस जैसे नकशों में उमरकोट दिया है। अन्य नकशों में नहीं मिलता है।

(उमरकोट के किले में, जो शहर से ½ मील है) जन्म, हमीदा बेगम के गर्भ से, तारीख १४ शाबान सन् ९४९ हिज्री—मु० ता० २३ नवंबर बृहस्पतिवार सन् १५४२—की रात्रि को हुआ था जो पूर्णिमा थी। मानो हुमायूँ के अंधकार का मिटानेवाला पुत्र रूप चंद्रमा ही तब उदय हुआ था। हुमायूँ यहाँ पर शेरशाह सूर से चौसा—कन्नौज—के युद्ध में हारकर पंजाब और मारवाड़, जैसलमेर के रेगिस्तानों में मारा मारा फिरता-फिराता यहाँ आया तो राणा **परशाद** ने इसको शरण दी थी। किला छोटा होने से, राणा की सलाह से, २००० सवारों से और ५००० पड़ोसी राज्यों की सेना से ठट्टा और बक्खर पर राणा ने हुमायूँ को लेकर चढ़ाई कर दी थी। तीन दिन पीछे ही यह आनंद-समाचार रास्ते में ही मिले। वहाँ धनाभाव से प्रस्तुत कस्तूरी के नाफे को चीरकर अपने उमरावों को कस्तूरी ही बाँटी गई और दुआ की कि जैसे इसकी खुशबू फैले वैसे ही इस बालक का प्रताप भी संसार में फैले। यही दुआ कुबूल हुई और अकबर ऐसा ही यशस्वी पुरुष संसार में हो गया। जो शिलालेख उमरकोट में जमाया गया है वह भी कृत्रिम है—उसमें सन् गलत है; क्योंकि उसमें ९६३ का हि० सन् जो खुदा है वह अकबर के तख्तनशीनी का है, जन्म का नहीं। "आईने अकबरी" में (१—३७६ पर) जन्म तारीख रजब की १—मु० अक्टूबर १४ या १५—दी है, सो० सरिश्ताई

(आफ़ोशेल) जन्म-दिन से टकराती होने को दी है। पूर्णिमा को जनमने के कारण अकबर का जन्मनाम "बद्रुद्दीन" रखा गया था जिसका अर्थ "दीन का उगता चाँद" होता है* । ३५ दिन पीछे बालक अकबर, उसकी माता आदि के सहित, उमरकोट के पास "जूँण" नामी कस्बे के बाग में लाया गया जिसको हुमायूँ ने जीत लिया था, और वहाँ डेरे डालकर रक्षित अवस्था में टिक गया था, क्योंकि गर्म मुल्क था और रमजान के व्रतों के दिन भी आ गए थे। अकबर ने बड़े होने पर सदा ही अपने जन्म-स्थान को याद रक्खा यद्यपि इसकी जियारत करने को वह नहीं आ सका था।

उमरकोट में काल की गति से कई उथल-पुथल हो गई थीं। बलूच लोगों ने सिंध को ले लिया था। यह इलाका मारवाड़ के कब्जे में भी संवत् १८२७ में आ चुका था। यहाँ पर सोढ़ा राजपूतों की अमलदारी थी। उनकी निर्बलता देखकर **सराई** जाति के लुटेरों ने लूट-खसोट मचा दी थी। **टालपुरा** वंश के मुसलमानों ने वहाँ अपना अमल

* "स्मिथ" साहब रचित "अकबर का इतिहास" पृ० १३-१४-१९ तथा "मेलीसन" साहब का "अकबर"।—अकबर की जन्म-तिथि विवाद-ग्रस्त है। इसको पीछे से बजाय २३ नवंबर के १४ या १९ अक्टूबर माना गया क्योंकि ठीक तिथि याद नहीं रही थी कि समय आपत्तियों का था। इस पर स्मिथ साहब ने "इंडियन एंटीक्वेरी" में (नवंबर सन् १९१९ के में) बहुत विचार प्रकाशित किया है।—ह० ना०।

कर लिया था। राठोड़ों ने महाराजा **विजयसिंहजी** की आज्ञा से टालपुरों के मुखिया मीर **बीजड़** को हटाकर उमरकोट पर कब्जा कर लिया था। कुछ अर्से तक उमरकोट यों राठोड़ों के कब्जे में रहा था। फिर महाराजा **मानसिंहजी** के समय में, संवत् १८७० में, टालपुरे मुसलमानों ने उमरकोट के किले और जिले को जोधपुर से पीछा छीन लिया था।

(जगदीशसिंह-रचित "मारवाड़ का इतिहास", पृ० १७८-१९२-५००)

कहते हैं कि उमरकोट के गढ़ और शहर को अमरसिंह या **उमरा** पँवार जाति के सोढा ने बसाया। इनके सोढों के मुखिया की पदवी राणा थी। ये बड़े ही वीर थे और इनके दानी होने की प्रशंसा थी। कभी इन सोढों का बड़ा दिन प्रताप रहा था और सिंध देश में इनकी धाक पड़ती थी। इनके यहाँ सिंधी घोड़े अच्छे भी थे और संख्या में भी बहुत थे। घोड़ों का दान भी ये किया करते थे। **धाट** यह नाम उमरकोट के जिले की भूमि का भी है और यह भूमि अपनी सुंदर जलवायु, उपजाऊपन, दूध के पशुओं और रूपवती नारियों के लिये विख्यात रही है। इन रूप-लावण्यवाले स्त्री-रत्नों की शोभा का वर्णन ही 'हमरोट-छत्तीसी' के आगे के दोहों में बड़ी सुंदरता से वर्णित है। और बाँकीदासजी की काव्य-रचना-चातुरी और प्रतिभा का तथा शृंगार-रस-निरूपण की कला का अच्छा प्रमाण है।

बारहट कविया मुरारिदानजी ने इसकी टीका भी स्पष्ट और सरल कर दी है जिससे कवि के अभिप्राय का ज्ञान प्राय: यथार्थ होता है।

(१०) स्फुट-संग्रह

इस संग्रह और इसमें के कुल गीतों की टीका के संबंध में प्रारंभ में नोट दिया गया है। अधिक लिखने की अब आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। हम महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकरजी ओझा, बारैठ सीतारामजी लालस, बा० जगदीशसिंहजी गहलोत, बारैठ मुरारिदानजी कविया, बा० महताबचंदजी खारैड, कवि हिंगलाजदानजी बारैठ आदिक विद्वानों के हृदय से कृतज्ञ हैं कि जिनकी कृपा और परिश्रम से यह तृतीय भाग और इसकी भूमिका संपादित हो सके हैं। इति।

जयपुर,
३० अगस्त सन् १९३३ ई०। } **पुरोहित हरिनारायण**

विषय-सूची

बाँकीदास ग्रंथावली

तीसरा भाग

---

(१) अथ जेहल जस जड़ाव

दोहा

धारापत जिम धारियाँ, सारा सहज सुभाव।
बारा धरम बैखांणजै, थारा भाराराव ॥ १ ॥
बीदग बिरचो बीनड़ो, हठ गाढ़ो लेहल्ल।
नमण खमण छोड़ै नहीं, जोड़ै कर जेहल्ल ॥ २ ॥

---

(१) धारापत = धारनगर का स्वामी, राजा भोज। सारा = सब। बारा = समय। थारा = तुम्हारा। भारा राव = भारमल; यह यादवों की जाड़ेचा शाखा का क्षत्रिय कच्छभुज का राजा था और जेहल का पिता था।

(२) बीदग = विदग्ध, पंडित, चारण। बिरचो = क्रोध करना। बीनड़ो = विनती। गाढ़ो = मजबूती से। लेहल्ल = पकड़ रखने से भी। नमण = नम्रता। खमण = क्षमा। जेहल्ल = जेहा; यह भारमल का पुत्र बड़ा दानी, उदार, वीर और यशस्वी हुआ है।

भावार्थ—चारण लोगों के क्रोध करने पर भी जेहल उनका विनय ही करता है। वह अपनी नम्रता और क्षमा को नहीं छोड़ता है और उनसे हाथ जोड़ता है।

कहिया रेहा कूड़ नँह, बेहा बायक अेह ।
जे जेहाँ जेहा नहीं, त्यागी केहा तेह ॥ ८ ॥
हूँ तो हत्थाँ भामणौ, बड़ा समत्थाँ बेह ।
ज्याँ जेहा जादव जिसो, नर निरमियो नरेह ॥ ९ ॥
जेहा मेहा जगत सूँ, मत बिरचो सुख मूल ।
जीवाड़ै सारो जगत, अै अबिरच अनकूल ॥ १० ॥
पर मंडल पर दीप में, हद घर घर कथ होत ।
कीरतवर जेहो कुँवर, जाड़ेचाँ धर जोत ॥ ११ ॥
नल राघव जुजठल नहीं, भू बीकम नँह भोज ।
है जेहो ऊनड़हरो, है नहँ कलू हनोज ॥ १२ ॥

रात क्या तमाम भारतवर्ष में फैली हुई थी । यह भी जाड़ेचा था । दाता = दानी । राणी जायाँ = राजकुमारों का । रूप = सुंदर स्वरूप ।

(८) रेहा = एक रेखामात्र, किंचित् । कूड़ = झूँठ । बेहा = विधाता, विधि । बायक = वचन । अेह = यह । जे = जो । जेहा = जेहा राजकुमार; जैसा । केहा = कैसा । तेह = वह ।

(९) तो = तेरे । हत्थाँ = हाथों को । भामणौ = बलिहारी जाता हूँ । बेह = विधि, ब्रह्मा । ज्याँ = जिसने । निरमियो = बनाया । नरेह = मनुष्यों में ।

(१०) मेहा = वर्षा । बिरचो = क्रोध करो । जीवाड़ै = जिवाता है, पालन करता है । अै = यह तो । अबिरच = प्रसन्न रहने पर ही ।

(११) पर = दूसरों के । दीप = द्वीप । हद = बेशुमार । कथ = कथा । कीरतवर = कीर्त्ति ग्रहण करनेवाला । जाड़ेचाँ = यादव क्षत्रियों की एक शाखा । धर = पृथ्वी । जोत = ज्योति ।

(१२) नळ = निषध देश का प्रसिद्ध राजा । राघव = रावणारि

मोज महण मूरत मयण, लोयण लाज अपार।
जेहल राजकुँवार जिम, कुण अन राजकुँवार ॥ १३ ॥
गढ़ गढ़ राजा गै गुडै, गढ़ गढ़ राजकुँवार।
भुज जेहलनूँ भेटियो, ओ कोइक अवतार ॥ १४ ॥
भेद खुलै षट भाष रा, बांणी चहूँ विचार।
बीटाँणो षट बरण सूँ, जेहो राजकुँवार ॥ १५ ॥
पाव घाव सिर पनगरै, धाव नाव धजराज।
समपै भाराराव सुत, करन चाव जस काज ॥ १६ ॥

रामचंद्र भगवान्। जुजठल = युधिष्ठिर, पांडु के बड़े पुत्र। भू = पृथ्वी। बीकम = प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य जिनका संवत् प्रचलित है। ऊनड़ हरो = ऊनड़ का वंशज। कलू = कलियुग। हनोज = अब तक।

(१३) मोज = रीझ, प्रसन्नता। महण = समुद्र। मयण = कामदेव। लोयण = नेत्र। कुण = कौन। अन = अन्य, दूसरा।

(१४) गढ़ = किला। गै = हाथी। गुडै = पाखर। भुज = कच्छभुज (शहर का नाम)। नूं = को, से। भेटियो = मिले। ओ = यह। कोइक = कोई

भावार्थ—किलों किलों में राजा, पाखर सहित हाथी और राजकुमार है किंतु जिसने कच्छभुज में आकर जेहल से भेट की उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि यह कोई अवतार है।

(१५) षट = छहुं। भाष रा = भाषा के। चहुँ = चारों वेद। बीटाँणो = घिरा हुआ। षट बरण सूँ = छहों वर्णों से, षट् वर्ण को षट् दर्शन भी कहते हैं। स्वामी गणेशपुरीजी ने अपने ग्रंथ 'वीर विनोद' में इनकी गणना यों की है—

"जति जोगि संन्यासिय जंगम है, दुज चारण ये षट् दर्शन है।"

(१६) पाव = पैर। पनगरै = सर्प के, शेषनाग के। धाव = वेग।

हव जादू जस बस हुवो, जग जाहर जेहल्ल।
चारण चाहै ज्यूँ करै, भालै भारहमल्ल ॥ १७ ॥
खून करैं षट बरन पिण, कुँवर करै नँह क्रोध।
भाराणी क्रन भोज ज्यूँ, पायो अचल प्रबोध ॥ १८ ॥
पाताँ जीवन पालगर, अनदाता आधार।
जेहो भारहमल्ल रो, भावठ भंजणहार ॥ १९ ॥
कुढ़ता उडता कूदता, ओद्रकता वप आप।
जेहो तोखै जाचणाँ, साहण इसा समाप ॥ २० ॥
मीठो बोलै हँस मिलै, पाताँ नँह ढक पल्ल।
कर आदर मीठा कवा, जीमाड़ै जेहल्ल ॥ २१ ॥

नाव = नौका। धजराज = घोड़ा। समपै = देता है। करन चाव = जबरदस्ती, बड़ी इच्छा से।

(१७) हव = अब। जादू = यादव। जाहर = प्रसिद्ध। चाहै ज्यूं = मन इच्छित। भालै = देखै।

(१८) खून = अपराध। पिण = परंतु। भाराणी = भारमल का पुत्र। क्रन = कर्ण। (महाभारतवाले)

(१९) पातां = चारणों का। जीवन = जीविका। पालगर = पालन करनेवाला। भावठ = उणारत, दिल का भाव, मनवांछित।

(२०) कुढ़ता = शरीर समेटकर चलनेवाले। ओद्रकता वप आप = अपने शरीर की परछाईं को देखकर झिझकनेवाले। (कुढ़ता उड़ता आदि साहण के विशेषण हैं।) तोखै = संतोषता है। जाचणां = याचकों को। साहण = घोड़े। इसा = ऐसे। समाप = देकर।

(२१) पातां = चारणों से। ढक = ढकता है। पल्ल = आँख की

सूंम मिलै अन सहर में, सहर उजाड़ समान ।
जो जेहो बन में मिलै, बनही राजसथांन ॥ २२ ॥
जिम नोगुण अवनी अमर, जिम हिरणांखी हार ।
इम गढ़वा बाँधा गलै, जेहल राजकुँवार ॥ २३ ॥
रामायण जहड़ो रचै, कवियण जस गुण कोय ।
जेहो जसरा बायकाँ, तो पण त्रपत न होय ॥ २४ ॥
मुगत होण अभिलाष मन, जे कासी जावंत ।
आथ तणै अभिलाष इम, इण भुजनूं आवंत ॥ २५ ॥
बेहा लिख खोटा बरण, रेहा हीन रहंत ।
पात अछेहा धन लहै, जेहा धन जहवंत ॥ २६ ॥

पलकें। नँह ढक पल्ल = आँख नहीं छिपाता है। कवा = गास, ग्रास। जीमाडै = जिमाता है, भोजन कराता है।

(२२) सूंम = कृपण, लोभी। अन = अन्य, दूसरे। उजाड़ = शून्य, सूनसान वन।

(२३) नोगुण = यज्ञोपवीत, जनेऊ। अवनी अमर = ब्राह्मण। हिरणांखी = मृगनयनी। गढ़वा = चारण। बांधा = बांधे, तमाम को।

(२४) जहड़ो = जैसा। कवियण = कविजन। बायकां = वचनों से। तो पण = तो भी।

(२५) मुगत = मुक्ति। जे = जो। आथ = धन। तणै = की। इण = इस। भुज = कच्छभुज (शहर का नाम)।

(२६) बेहा = विधि के, विधाता के। लिख = लिखे हुए। खोटा = बुरे। रेहा = रेखा। पात = चारण। अछेहा = अपार। धन = धन्य। जहवंत = यशस्वी।

जेहल वित दीधाँ बिना, नर ऊजलो न होय।
भाराथी लीधाँ भलम, जलहर साम्हो जोय ॥ २७ ॥
पातसाह राखै प्रसन, जेहा तो घण जांण।
मकै मदीनैं मारगाँ, ताठ सकै कुण तांण ॥ २८ ॥
सीना गजाँ गुड़ावही, तीना बडा तुरंग।
अै जेहल कीना अमर, तैं दीना तरलंग ॥ २९ ॥
तू पारस तू कलपतर, चिंतामण घण चाव।
सांमा इंद समंद तु, भारहमाल सुजाव ॥ ३० ॥

---

(२७) वित = वित्त, धन। ऊजलो = उज्ज्वल। भलम = भलाई। जलहर = बादल, मेघ। (मेघ वर्षा के पहले श्याम रंग के दिखाई देते हैं और वर्षा के पश्चात् श्वेत दिखाई देते हैं। अतः दिए बिना मनुष्य उज्ज्वल (कीर्त्तिवान्) नहीं होता है। (कवि-समुदाय में कीर्त्ति का रंग श्वेत माना जाता है।) साम्हो = सम्मुख। जोय = देखो।

(२८) प्रसन = प्रसन्न, खुश। घण जांण = बहुत समझनेवाला। मकै मदीनैं = मक्का मदीना में मुसलमानों के तीर्थस्थान हैं। मारगाँ = मार्ग में, रास्ते में। ताठ सकै = छीन सकता है। कुण = कौन। तांण = खैंचकर, जबरदस्ती।

(२९) सीना = छाती। गजाँ = हाथियों को। तीना = तैसे। तुरंग = घोड़े। अमर = मृत्यु-रहित अर्थात् इनके दान की महिमा रहेगी जब तक ये जीवित रहेंगे। तरलंग = चपल।

(३०) कलपतर = कल्पवृक्ष। घण-चाव = बहुत प्रसिद्ध। सांमा = राजा समो जो जाड़ेचा यादवों का पूर्वपुरुष गजनी का राजा था। उसके वंशज सामा कहाए। सुजाव = पुत्र।

मोताहल रहसी नहीं, हैवर हीर चमीर।
जेहलिया जाताँ जुगाँ, बाताँ रहसी बीर॥ ३१ ॥
अत थारो जस ऊजलो, जेहल दिस दिस जोय।
हिमकर तै घट बध हुवै, हिमगिर गलजल होय॥ ३२ ॥
सांमा दाता दीठ सह, तो दीठाँ ओ तंत।
हाथ हेक कण चाँपियाँ, मणरी खबर पड़ंत॥ ३३ ॥
प्राणाँ नूँ तजियाँ पछै, जस सूँ जे जीवंत।
जेहा धर अंबर जितै, उणरो नँह है अंत॥ ३४ ॥
सायर जल कपिकेत सर, पंचाली चय चीर।
याँसूँ मोजाँ आपरी, बधती जेहल बीर॥ ३५ ॥

---

(३१) मोताहल = मोती। हैवर = श्रेष्ठ घोड़ा। हीर = हीरा। चमीर = चामीर, स्वर्ण, सोना। जेहलिया = जेहा भाराणी। जाताँ जुगाँ = युग व्यतीत होने पर। रहसी = रहेगी।

(३२) अत = अति, अधिक। थारो = तेरा। हिमकर = चंद्रमा। तै = तो। घट बध = घटता बढ़ता है। हिमगिर = हिमालय। गल = पिघलकर।

(३३) सांमा = सामो या समो के वंशज। दाता दीठ सह = सब दानियों को देखकर। तो = तुझको। ओ = यह। तंत = तत्व, सार, नतीजा। हाथ हेक कण चाँपियाँ = पकाते समय चावलों में से एक कण को पीसने से मन भर की खबर पड़ जाती है।

(३४) प्राणाँनूँ = प्राणों को। पछै = बाद में। जस सूँ = यश से। धर = पृथ्वी। अंबर = आकाश। जितै = जब तक। उणरो = उसका।

(३५) सायर = समुद्र। कपिकेत = अर्जुन। सर = बाण। पंचाली = द्रौपदी। चय = समूह। याँसूँ = इनसे, उक्त वस्तुओं से। मोजाँ =

कवि पंडित गायक कथक, मंत्री गज भड़ मल्ल ।
तो दरबार जिता तिता, जग चावा जेहल्ल ॥ ३६ ॥
तूझ तुरंगाँ दान रा, हिमगिर तलहटियाँह ।
गावै गीत तुरंगमुख, जलरख जल० बटियाँह ॥ ३७ ॥
देस देस लाखा दुवा, जस थारो जेहल्ल ।
जावै पिण जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल ॥ ३८ ॥
गीता नँह तो गीतड़ा, छंद नहीं तो छंद ।
जप नँह जपणो तूझ जस, मो घर भारहनंद ॥ ३९ ॥

दातव्यता । बधती = विशेष है, अधिक है। अर्जुन के बाण अनंत और अमोघ थे, जेहल की दानवीरता अपरिमित थी ।

(३६) कथक = कत्थक, नाचने-गानेवाला । भड़ = शूरवीर । मल्ल = योद्धा । तो = तेरे । जिता = जितने । तिता = उतने । चावा = प्रसिद्ध है ।

(३७) तूझ = तेरे । तुरंगाँ = घोड़ों का । तलहटियाँह = तलैटी तक । तुरंगमुख = किन्नरगण । जलरख = यक्ष (वरुण के सिपाही) । जल बटियाँह = समुद्रों तक, अथवा गुह्यक और सिद्धों तक । अर्थात् तेरा जस सर्वत्र गाया जाता है—आसमुद्र आनाक यश फैल रहा है ।

(३८) लाखा = लाखा फूलाणी प्रसिद्ध जाड़ेचा वीर राजा जेहल का पूर्वज था । दुवा = दूसरा । अछेरा = अछेह, अपार आश्चर्य । गल्ल = बात, कीर्तिमय कथा ।

(३९) तो = तेरे । गीतड़ा = यश के गीत । जपणो = जपा जाता है । मो = मेरे । भारहनंद = भारमल के पुत्र, जेहल ।

जेहल तो दिस बिदिस जस, भलहल छायो भाल ।
पूनमपतरो पसरियो, जाणै किरणाँ जाल ॥ ४० ॥
जेहल ताल खडीण हुवै, तरवर लाकड़ होय ।
हरम ढहे ढूँढा हुवै, जस अविकारी जोय ॥ ४१ ॥
तैं जेहा दीधा तुरी, मृग जीपण मलफंत ।
चढे जिकाँ अन पह चढै, तोरण वारण तंत ॥ ४२ ॥
माधव दस दस हेक म्रिढ़, अै बारह आदीत ।
एक एक तो जिम अवर, जेहा कुँण जग जीत ॥ ४३ ॥

---

(४०) भलहल = भलभलाट करता हुआ, प्रकाशमान होकर । भाल = देखकर । पूनमपतरो = चंद्रमा का । जाणै = मानो (उत्प्रेक्षा-वाची शब्द है) । पसरियो = फैला हुआ है । किरणां जाल = किरणों का समूह ।

(४१) ताल = तलाब । खड़ीण = वह जमीन जो हल से जोती बोई जाती है । तरवर = वृक्ष । लाकड़ = लकड़ा, सूखा ठूँठ । हरम = धनाढ्यों के महल । ढहे = गिरकर । ढूंढा = खंडहर मकान । अविकारी = नहीं बिगड़नेवाला ।

(४२) तुरी = घोड़े । जीपण = जीतने को । मलफंत = कूदते हैं । जिकां = जो । अन = अन्य । पह = राजा । तोरण = विवाह के समय । रण = युद्ध के समय । (हे जेहल ! तैंने कूदने में मृगों को जीतनेवाले ऐसे ऐसे घोड़े दान में दिए हैं जो दूसरे राजाओं को विवाह के समय पर अथवा युद्ध के समय पर चढ़ने को मिलते हैं ।)

(४३) ईश्वर के १० अवतार विशेष पूज्य हैं, रुद्र भी ११ हैं और सूर्य भी १२ हैं, तेरे जैसा एक जगत् को जीतनेवाला कोई नहीं है । इसमें दातव्यता की विशेषता दिखाई है ।

कुँवर तुहालो श्रीकमल, नित भलहलतै नूर।
देखतड़ाँ दुख दूर है, पाय रजक सुख पूर ॥ ४४ ॥
जस देसंतर जावही, रूपंतर बलहंत।
कालंतर न कलीजणो, जेहा तू जाणंत ॥ ४५ ॥
हुवो महाकवि मंगणों, दातारांँ सिर भाग।
दाता मंगण भाव है, जेहा जस छल लाग ॥ ४६ ॥
सिव सुसरो वाहण सदन, तिलक हार सिर तोय।
जेहल रो याँ जेहडो, कहै सुजस सह कोय ॥ ४७ ॥

---

(४४) तुहालो = तेरा। श्रीकमल = मुख। भलहलतै = प्रकाशमान, तेजस्वी। नूर = रूप। देखतड़ाँ = देखते ही। रजक = रोजगार।

(४५) देसंतर = अन्य देशों में। रूपंतर बलहंत = रूप और बल का नाश हो जाता है। कालंतर = कालांतर में भी। कलीजणो = लुप्त होता है।

(४६) मंगणों = याचक। जस छल लाग = यश कराने के लिये।

भावार्थ—हे जेहल! तू है तो दानियों का मुकुट परंतु अपने यश को महाकवियों द्वारा कराने के लिये उनका याचक हो गया है।

(४७) सिव सुसरो = हिमालय। वाहण = शिव-वाहन, नांदिया। सदन = शिव का घर, कैलाश। तिलक = शिव-तिलक, चंद्रमा। हार = शिवहार, मुंडमाला वा श्वेत सर्प। सिर तोय = गंगा। जेहलरो = जेहल का। याँ = इन, उक्त वस्तुओं। जेहडो = जैसा। सह कोय = सब कोई।

असपतियाँ सिर ऊपरै, हेकै नव सुभ होय ।
साँ देसाँ केरा तुरी, जेहल समपै जोय ॥ ४८ ॥

सोरठा

भारा तो धन भाग, जाड़ेचा दाखै जगत ।
तीखो खाग तियाग, जेहल बेटो जनमियो ॥ ४९ ॥
भाराणी जस भार, भुज मंडण थारा भुजाँ ।
ऊगै दीह उदार, पाताँ घर पूगै पवँग ॥ ५० ॥
सांमा तो सुभ राज, ऊगै दन ऊनड़हरा ।
जेहा धरम जिहाज, कीरत काज दधीच क्रन ॥ ५१ ॥

---

(४८) असपतिआं सिर ऊपरै = बादशाहतों में बड़ी बादशाहत अथवा उत्तम जाति के घोड़े वा उन घोड़ों के सरदार । हेकै नव सुभ होय = एक के ऊपर नव शून्य, अरब (देश) । सां = उस । केरा = के । तुरी = घोड़े । समपै = देता है ।

(४९) भारा = भारमल । धन = धन्य । भाग = भाग्य । जाड़ेचा = यादव क्षत्रियों की एक शाखा । तीखो = तेज । खाग = खड्ग । तियाग = त्याग, दान ।

(५०) भाराणी = हे जेहल । भुज = कच्छभुज (देश) । ऊगै दीह = दिन उदय होते ही, नित्य । पातां घर = चारणों के मकान । पूगै = पहुँचते हैं । पवँग = घोड़े ।

(५१) ऊगै दन = दिन उदय होते ही, नित्य, हमेशा । ऊनड़हरा = ऊनड़ के वंशज । जिहाज = जहाज ।

भावार्थ—हे समोके वंशवाले, हे ऊनड़ के वंशज जेहल ! तेरा राज हमेशा रहे । तू धर्म का जहाज है और कीर्ति के लिये दधीचि और कर्ण जैसा है ।

जलनिध सहल जुआँण, साँमा तू बेड़ा सजै ।
भैचकि पड़ै भगाँण, मिसर अरब ऐराक मझ ॥ ५२ ॥
ऊनड़रो आचार, भाराणी भूलो नहीं ।
जेहा जग दातार, जीवै धर अंबर जितै ॥ ५३ ॥
कुरब अनेक कियाह, सोना अस जवहर समपि ।
जीवाँ जेहलियाह, सुनजर भारहमाल सुत ॥ ५४ ॥
फरहरता कपि फाल, अस दै तैं असवारियाँ ।
भाराणी भुरजाल, भुजरो भलो भवाड़ियो ॥ ५५ ॥
भाराणी भटकेह, आवै कवि पाला अठै ।
ऊतरिया अटकेह, अस पावै ऐराकरा ॥ ५६ ॥

---

(५२) जलनिधि = समुद्र में । सहल = हवाखोरी के लिये । जुवाण = जवान । बेड़ा = नावें, नौकाएँ । सजै = तैयार कराता है । भैचकि = डरकर । भगाँण = भगदड़ । मझ = मध्य ।

(५३) भाराणी = जेहल । दातार = दानी । धर = पृथ्वी । जितै = जब तक ।

(५४) कुरब = प्रतिष्ठा के कार्य्य । अस = अश्व, घोड़े । जवहर = जवाहिरात । समपि = देकर । जीवाँ = हम जीते हैं ।

(५५) फाल = छलांग । फरहरता कपि फाल = बंदर की तरह छलाँग मारते हुए । दे = दिए । तैं = तूने । असवारियाँ = सवारी । भुरजाल = जबरदस्त किला । भलो = अच्छा । भवाड़ियो = कर दिया ।

(५६) भटकेह = भटकते हुए । पाला = पैदल । अठै = यहाँ । ऊतरिया अटकेह = विश्राम के लिये ठहरते हैं । अस = घोड़े ।

तोनूँ तूकारेह, सुकवी विरदावै सदा ।
दत तू हैवर देह, जेहल जीकारा दिए ॥ ५७ ॥
ज्याँ घर जेहलियाह, है तहँ चीतरिया हुता ।
दत है जिकाँ दियाह, माँडीजै जे चीत मझ ॥ ५८ ॥
हैवरचंद हुवाह, जेहल तैं दीधा जिके ।
देखै भूप दुवाह, भारानंद चकोर भत ॥ ५९ ॥
जेहा जीण जड़ाव, गजगावाँ मिस कुँअर गुर ।
रचि सपंख हय राव दीधा तैं लाखा दुआ ॥ ६० ॥
जेहा केहा ज्याग, हैवर राखेड़ा हुवै ।
ताजी दीजै त्याग, जस लीजै सोई जगन ॥ ६१ ॥

---

(५७) तोनूं = तुझको । तूकारेह = तूकारा देकर, रैकारा देकर । विरदावै = यश-गान करते हैं । दत = दान में । हैवर = श्रेष्ठ घोड़े । देह = देकर । जीकारा = नाम के आगे 'जी' लगाकर बोलना ।

(५८) जाँ = जिनके । चीतरिया हुता = चित्राम के, चित्रित किए हुए (घोड़े) । जिकाँ = उनको । माँडीजै जे चीतमझ = चित्त में जिनको लिखना चाहिए, अर्थात् चित्त में लिखने योग्य, सुंदर । है = हय, घोड़े ।

(५९) हैवर = घोड़े । जिके = जो । दुवाह = दूसरे । भत = भाँति, तरह ।

(६०) जीण = जीन । जड़ाव = जड़ाऊ । दुआ = दूसरा ।

भावार्थ—जेहल ! तू दूसरा लाखा फूलाणी और राजकुमारों में बड़ा है । तैंने घोड़े दान में दिए । उनके जड़ाऊ जीन और गजगाँवों के मिस से पंख लगा दिए हैं । गजगा = गचके, जीनों के चँवर बँधे हुए ।

(६१) केहा = कैसा । ज्याग = यज्ञ । राखेड़ा = भस्म । ताजी = घोड़ा । जगन = यज्ञ ।

जवहर जेहलियाह, तैं न किया घोड़ाँ तणा ।
दल सुध दाँन दियाह, काठी घाटी कवियणाँ ॥ ६२ ॥
ऊनड़ हेम उदार, चंदण लाखो चक्रवती ।
जेहा हुंत जुहार, हुताँ इता हूँता हुअै ॥ ६३ ॥
राज भगीरथ राम, जुजठल जस जण जण जपै ।
कीधाँ मोटा काम, नाम रहै जेहल नराँ ॥ ६४ ॥

भावार्थ—हे जेहल! वह कैसा यज्ञ है जिसमें (सुंदर) घोड़े भस्म होते हैं। सच्चा यज्ञ तो वही है जिसमें घोड़े दान देकर यश प्राप्त किया जाता है।

(६२) जवहर=जौहर व्रत जिसमें विपत्ति के समय राजपूत स्त्रियाँ अपने को अग्नि की भेंट दे देती थीं। यहाँ पर 'जवहर' के शब्दार्थ जलाने या अश्वमेध यज्ञ के हैं। दल=दिल, चित्त। सुध=शुद्ध। काठी=काठियावाड़ी। घाटी=घाट के। (इन दोनों स्थानों के घोड़े श्रेष्ठ होते हैं।) अथवा घाटी=अश्वघाटी छंद कवि लोग उच्चारण करते हैं और जेहल उत्तम काठियावाड़ अश्व देता है। घाटी=हमला करनेवाला, तेजतर्रार।

(६३) ऊनड़=ऊनड़ जाड़ेचा, जेहल का पूर्व पुरुष। हेम=हेम हड़ाऊ, दानी राजा हुआ था। चंदण=चंदण सोढा क्षत्रिय राजा बड़ा दानी हुआ था। लाखो=लाखा फूलाणी प्रसिद्ध दानवीर। हूंत=से। जुहार=मिलना, नमस्कार आदि रार्मा स्यांमां। हुतां इता हूंता हुअै=इतने (उपरोक्त दानी राजा) हुए, उनसे मानों सबसे मिल लिया। अर्थात् जेहल राजा इतना बड़ा दानी था कि अन्य दानियों से कम नहीं था।

(६४) जुजठल=युधिष्ठिर। जण जण=प्रत्येक मनुष्य।

साँमा तू सुदतार, घर माँगण आयाँ घणाँ ।
बित बगसण बडवार, हरख घणो तो उर हुवै ॥ ६५ ॥
बित विलसणरी बार, नर सठ बित बिलसै नहीं ।
जावै बीत जियार, जेहल पछतावै जिके ॥ ६६ ॥
नामाँ कामाँ नेक, कीधा तैं जेहा कुँवर ।
हेक रसण सूँ हेक, कवियण सकै बखाण कुण ॥ ६७ ॥
दिनकर बाहण देह पाहण फूटै पोड़ सूँ ।
जेहल साहण जेह, साहण समुँद समापिया ॥ ६८ ॥
मिलै नहीं मकराँण, ताज केच माँझल तुरी ।
जेहलिये घण जाँण, मोजाँ दियण मँगविया ॥ ६९ ॥

भावार्थ—हे जेहल ! बड़े कार्य करने से मनुष्यों का नाम रह जाता है । जैसे राजा भगीरथ, भगवान् रामचंद्र और युधिष्ठिर का यश प्रत्येक मनुष्य जपता है ।

(६५) घणा = बहुत । बगसावण = देने में । बडवार = बड़ा । घणो = अधिक । हरख = हर्ष, खुशी ।

(६६) बिलसणरी = भोगने की । बार = समय । बिलसै = भोगते हैं । जियार = जीवन । बीत = समाप्त ।

(६७) हेक = एक । रसण = जिह्वा । कुण = कौन ।

(६८) दिनकर-बाहण = सप्ताश्व । पाहण = पत्थर । पोड़ सूं = पांव से । साहण = घोड़े ।

(६९) मकराण = मकरान, काबुली घोड़े । ताज = अरबी घोड़ा, ताजी । अथवा इन देशों में जो घोड़ों के लिये प्रसिद्ध हैं जो घोड़े नहीं मिलें वैसे बढ़िया सुंदर घोड़े मँगाए । घण जांण = बहुत समझवाला ।

हव जेहल रिषहाड़, सोनग पल़ जगदेव सिर।
गुर जसझंडा गाड, ऊबरिया यल़ ऊपरै॥ ७० ॥
काल़ा जल़ं रा कीप, बाहण आणै पार विण।
जस साटै जग जीप, जेहल लूटावै जिके॥ ७१ ॥
मृग मरकट मन मीन, नाव नागरीनयण नट।
देख हुवै अै दीन, अस जेहल बगसै इसा॥ ७२ ॥
जेहो सीहाँ जाड़, ऊबेडै ऊनड़हरो।
चारण माथै चाड़, रूपग सुण सुण राखिया॥ ७३ ॥

---

(७०) हव = अब। रिषिहाड = दधीचि ऋषि का अस्थिदान इंद्र को। सोनग पल = सोनग राठोड़ ने शरीर का मांस काटकर दिया। जगदेव सिर = जगदेव पँवार ने अपना सिर कंकाली भाटण को माँगने पर दान में दिया था। गुर जस = भारी यश का झंडा (स्तंभ), गाड़कर स्थापन करके। ऊबरिया = रक्षित रहे, अमर हो गए।

(७१) काला जल रा कीप = काले समुद्र (ब्लेक सी) के आस पास के देशों (इराक, बाकू आदि) में घोड़े अच्छी नसल के पैदा होते हैं। कीप = द्वीप का पाठांतर प्रतीत होता है। बाहण = वाहन, घोड़े। आंणै = मँगाए। पार विण = अपार। साटै = बदले में। जीप = जीतनेवाला। जिके = वे, उनको।

(७२) अै = यह। अस = अश्व। बगसै = दान में देता है इसा = ऐसे। मृग आदि के एक एक गुण उन अच्छे घोड़ों में हैं जो दान में जेहल राजा देता है।

(७३) सीहा = सिंहों की। जाड़ = डाढ़ें। ऊबेडै = उखाड़ सकता है। चाड़ = चढ़ा रखे हैं। रूपग = यशकविता।

कुण जावै कांबोज, मिसर अरब ऐराक मझ ।
भुज जेहो क्रन भोज, अस रीझाँ बगसै उसा ॥ ७४ ॥

इति जेहुल जस जडाव ।

---

(७४) कुण = कौन । कांबोज, मिसर, अरब और ऐराक के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं । भुज = कच्छभुज में । रीझाँ = प्रसन्न होकर । उसा = वैसे ।

इति जेहुल जस टीका समाप्त ।

(२) अथ कायरबावनी

सिव सिवसुत हिमगिरसुता, बिसनु दिवाकर बंद ।
अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमंद ॥ १ ॥
आग न जागै आँखियाँ, तिण सिर दीधाँ तंत ।
पल पल मुख पुलकावणो, कायर ही उचकंत ॥ २ ॥
दिन नूँ रजनी दाखियाँ, दाखै तारावंत ।
न दे ओहड़ो वाँ नराँ, कनैं म राखो कंत ॥ ३ ॥
कंथ म राखो कायराँ, करै नजर जो कोड़ ।
दोयण दल बींटोदियाँ; छल कर जावै छोड़ ॥ ४ ॥
कंथ सुहावै ज्यूँ करो, कायर नावै काज ।
रहै न कायर राज में, रहै जिकाँ घर राज ॥ ५ ॥

---

(१) सिवसुत = गणेश । हिमगिरसुता = पार्वती । दिवाकर = सूर्य्य । बंद = नमस्कार करके । अपहास री = उपहास की ।

(२) आग = अग्नि, तेज । जागै = प्रज्वलित होता है । तिण = उसके । तंत = निश्चय । ही = हृदय । उचकंत = उछलने लग जाता है, धड़कने लग जाता है ।

(३) नूं = को । रजनी = रात । दाखियाँ = कहने पर । ओहड़ो = उलटा जवाब । म = मत । कनैं = पास, नजदीक ।

(४) दोयण = शत्रु । दल = फौज, सेना । बींटोदियाँ = घेरा डालने पर ।

(५) कंथ = कंत, पति । सुहावै = अच्छा लगै । नावै = नहीं आता है । जिकां = जिनके ।

गाडाँ भरिया गोलणाँ, सूनो सदन सुरंग ।
कंथ घणाँ ही कायराँ, जाणीजै इम जंग ॥ ६ ॥
कंथ म राखो कटक में, नर कायर निरलज्ज ।
काला बलदाँ काढ़जै, काँकल जीपण कज्ज ॥ ७ ॥
काल न आवै कायराँ, बालम बिसवा बीस ।
पकड़ै रण घर पंथ नूं, पकड़ै नँह पाँडीस ॥ ८ ॥
कायर अधरम कुजस सूँ, नीच न डरपै नाह ।
डरपै परदल देखियाँ, रण तज लागै राह ॥ ६ ॥
लाखाँ सठ दे लीजिए, पंडित गुण भरपूर ।
कायर लाखाँ बेचकर, साहिब लीजै सूर ॥ १० ॥

---

(६) गोलणाँ = गुलामों से । सूनो = शून्य । सुरंग = सजा हुआ । घणाँ = बहुत । इम = इस प्रकार । जंग = युद्ध ।

(७) कटक = युद्ध, फौज । बलदाँ = बैलों पर । काढ़जै = निकाल देना चाहिए । काँकल = युद्ध । जीपण = जीतने को । (प्राचीन काल में देश-निर्वासन दंड के समय दंडित पुरुष का काला मुँह, काले कपड़े करके काली सवारी (बैल या गधा) पर बैठाकर देश बाहर कर देते थे ।

(८) बालम = स्वामी, पति । बिसवा बीस = निश्चय ही । पकड़ै रण घर पंथ नू = युद्ध से घर का रास्ता पकड़ता है अर्थात् युद्ध से घर भाग जाता है । पाँडीस = तलवार ।

(६) नाह = पति, स्वामी । डरपै = भय करता है । परदल = दूसरों की सेना को । लागै राह = भाग जाता है ।

(१०) सठ = शठ, मूर्ख । साहिब = हे स्वामी । सूर = शूरवीर ।

भेष लियाँसूँ भगत नँह, है नँह गहणाँ हूर।
पोथी सूँ पंडित नहीं, ससतर सूँ नँह सूर॥ ११॥
आवै अँनदातार नूँ, भारथ खलाँ भलाय।
पितरेसुर जिण रा पड़ै, नरक बिचालै न्याय॥ १२॥
ज्यूँ कुकवि की जीभ में, ब्रह्मसुता नँह बास।
त्यूं कायर री तेग में, नँह कालिका निवास॥ १३॥
अदताँ केरी अत्थ ज्यूँ, कायर री किरमाल।
कोड़ प्रकाराँ कोससूँ, नँह पावै नीकाल॥ १४॥
मंजन करै सधीर मन, सूरा साराँ धार।
कायरड़ा मंजन करै, आँसू धार मझार॥ १५॥

---

(११) गहणाँ = भूषणों से, जेवरों से। हूर = सुंदर। भगत = भक्त। पोथी = पुस्तक। ससतर सूँ = शस्त्र से।

(१२) अँनदातार = रोटी देनेवाला। भारथ = युद्ध में। खलाँ भलाय = शत्रुओं को देकर, शत्रुओं के सिपुर्द करके। पितरेसुर = पितृश्वर। बिचालै = अंदर। न्याय = ठीक ही है।

भावार्थ—जो अपने अन्नदाता को युद्ध में शत्रुओं के सिपुर्द कर आता है उसके पितृश्वरगण नरक में पड़ते हैं।

(१३) ब्रह्मसुता = सरस्वती। तेग में = तलवार में।

(१४) अदताँ = कृपणों। केरी = की। अत्थ = धन। किरमाल = तलवार। कोस सूँ = कोष से, खज़ाने से, तलवार की म्यान से।

(१५) मंजन करै = स्नान करता है। सधीर = धैर्यसहित। साराँ धार = तलवारों की धार में।

आँसूँ नाखै आँख सूँ कर हूँता किरमाल।
भागल नँह नाखै भिड़ज, असहाँ सिर आताल॥ १६ ॥
बरणी कायरता बड़ी, खोड़ाँ माँझल खोड़।
देखै खल मुख मैं दिवै, तेग थकाँ त्रण तोड़॥ १७ ॥
कहणो गोलाँ हूँत की, डोलाँ हूँत डरंत।
खल दल केरी खेह सूँ कायर खेह करंत॥ १८ ॥
काँकल समै कुबेलियाँ, म दे संग महमाय।
निजराँ आगै निमष मैं, हार मोर ह्वै जाय॥ १९ ॥

---

(१६) नाखै = गेरते हैं, पटकते हैं। भागल = युद्ध से भागनेवाला, कायर। भिड़ज = घोड़ा। असहाँ सिर = शत्रुओं के ऊपर। आताल = तेजी से।

(१७) खोड़ाँ = ऐबों। खल = शत्रु। दिवै = देते हैं। थकाँ = मौजूद होने पर।

भावार्थ—कायरता सब ऐबों का ऐब कहा गया है। फिर भी कायर हाथ में तलवार होने पर भी शत्रु को देखकर मुख में तृण दे लेता है अर्थात् अपनी दीनता प्रकट करता है।

(१८) गोलाँ हूँत = तोपों के गोलों से। की = क्या। डोलाँ हूँत = आँखों से। खेह सूँ = रज से। खेह करंत = खाक धूल करते हैं अर्थात् कुछ नहीं करते हैं।

(१९) समै = समय पर। कुबेलियाँ = खोटे साथियों का। म = मत। महमाय = हे देवी। हार मोर ह्वै जाय = ('चित्र का मयूर हार को निगल गया था', यह एक किंवदंती है) चित्रित मयूर के आगे हार हुआ जैसे अर्थात् गायब हो जाता है।

जाणै बल्लभ जीवणो, कायर नाँणै कोह।
लोपै साँकल लोह री, लख रण नागो लोह ॥ २० ॥
आवै लोही ईखियाँ, तन ज्याँ, भड़ाँ तिँवाल।
अचरज किसो अचेत है, देख लोह विकराल ॥ २१ ॥
ज्यूँ कामण पोसाक कर, पाछानूँ पेखंत।
भागल पाछे भालही, भाजंतो इण भंत ॥ २२ ॥
दव विण सारा दाहिया, अथवा खारच अंग।
नर कायर बाँछै नहीं, जिण घर माथै जंग ॥ २३ ॥
करसण सेही स्याल बिल, गिर त्रिय बाँभण गाय।
समरांगण मँह साधणा, चाहे चित्त चलाय ॥ २४ ॥

---

(२०) बल्लभ = प्रिय, प्यारा। जीवणो = जीवन को। नाणै = नहीं लाता है, नहीं करता है। कोह = क्रोध। नागो लोह = नंगा शस्त्र।

(२१) लोही = खून। ईखियाँ = देखने से। भड़ाँ = योद्धाओं को। तिंवाल = चक्कर। किसो = कैसा।

(२२) कामण = स्त्री। पोसाककर = कपड़े पहिनकर। पाछानूँ = पीछे की ओर। भालही = देखती है। भाजंतो = भागता हुआ। भंत = भाँति, तरह।

(२३) दव = अग्नि। विण = विना। दहिया = जला, या जलाया। खारच = खारिज, बेकार। बांछै = चाहै। माथै = ऊपर, में। अर्थात् कायर ऐसा डरपोक होता है कि घरों की मामूली लड़ाई में जाना नहीं चाहता। उसकी तरफ से चाहे सारा घर या वन जल जाय या तबाह हो जाय चाहै शरीर का कोई अंग ही कट जाय और खारिज हो जाय।

(२४) करसण = किसान। सेही = एक पशु जिसके शरीर पर लंबे लंबे काँटे से होते हैं। स्याल = शृगाल। बाँभण = ब्राह्मण।

लाजालू बागाँ मही, कायर कटकाँ माँहि ।
परसे नरकर रो पवन, सकुचै संसो नाँहि ॥ २५ ॥
त्रण दाँताँ लेणा तुरत, आडा देणाँ पाँण ।
भारथ जे पड़ भागणाँ, औ कुभटाँ अवसांण ॥ २६ ॥
भागल भारथ भीड़ में, बाणो सह बिसरंत ।
मुख बापूड़ो मावडो, भाईड़ो भाषंत ॥ २७ ॥
काँकण समै कुबेलियाँ, सरकण तणों सुभाव ।
निगुणाँ थिर रोपै नहीं, पाव घड़ी ही पाव ॥ २८ ॥
नर कायर आँणै नहीं, लूँण लिहाज लगार ।
धोलै दिन छोडै धणी, अणी मिलै उण बार ॥ २९ ॥

कायर मनुष्य युद्ध में किसान, स्त्री, ब्राह्मण, गाय बन जाता है अथवा सेही (शृगाल) के समान बिल में वा पहाड़ की गुफा में छुप जाता है ।

(२५) लाजालू = लजवंती, छुईमुई । परसे = स्पर्श करने से । सकुचै = संकुचित होते हैं । संसो = संशय ।

(२६) त्रण = तृण । दाँताँ = दंतों में । पाँण = हाथ । औ = यह । कुभटाँ = कायरों के । अवसाँण = मौके ।

(२७) भीड़ में = झुंड में । बिसरंत = भूल जाता है । बापूड़ो = बेचारा, दीन । मावड़ी = माता । भाईड़ो = भाई ।

(२८) सरकण = खिसकना, भगना । पाव = पैर ।

(२९) लूँण = नमक । लगार = जरा भी । धोलै दिन = दिन ही में, प्रगट में । धणी = स्वामी । अणी = सेना । उण बार = उस समय ।

काँकल़ छोड़े कूदियो, भागल पोरस-भंग।
कीधा जाणै काढ़माँ, कुड़ नीसरे कुरंग ॥ ३० ॥
कायरः थाको दौड़कर, ससि सूँ करै पुकार।
म्रग ज्यूँ मूझ बसावजै, मंडल तणैं मँझार ॥ ३१ ॥
गत गैंवर कटि केहरी, रमणी हाटक रंग।
कुच गिरवर लोयण कमल़ ओ हैं कुसले अंग ॥ ३२ ॥
सुख सूँ बैठी सदन में, क्यूँ पूछो कुसल़ात।
तो तन कुसल़ायत तणी, बालम पूछूँ बात ॥ ३३ ॥

---

(३०) काँकल = युद्ध । भागल = भगोड़ । पोरसभंग = पुरुषार्थहीन । काढ़माँ = भागना, दौड़ा । कुड़ = एक प्रकार का लोहे का यंत्र जिसके द्वारा हरिण आदि पशु पकड़े जाते हैं । पुरुषार्थ-हीन (कायर) मनुष्य युद्धभूमि से इस तरह भागता है मानो काठ में किया हुआ हरिन निकलकर भागता है ।

(३१) थाको = थका हुआ । ससि सूँ = चंद्रमा से । मूँझ = मुझको ।

(३२) गत = गति । गैंवर = हाथी । केहरी = सिंह । हाटक = स्वर्ण । लोयण = नेत्र । ओ = यह ।

भावार्थ—किसी स्त्री का स्वामी युद्ध से भागकर घर आया है और अपनी स्त्री से पूछ रहा है—हे स्त्री ! तुम्हारी गज सी चाल, सिंह जैसी कमर, कंचन सा रंग, गिरि समान कुच, कमल से नेत्र और अंग तो कुशल से हैं ?

(३३) क्यूं = क्यों । कुसलायत = कुशलता । बालम = स्वामी, पति ।

भावार्थ—वह स्त्री उत्तर देती है—मैं तो मकान में अच्छी तरह रहती थी, मेरी कुशल क्यों पूछते हैं ? हे स्वामी, आपके शरीर की कुशलता मैं पूछती हूँ । (क्योंकि आप युद्धभूमि से आए हैं ।)

मूँछ नाक सिर रो मुकुट, ससतर सांम सनाह ।
साबत लायो समर सूँ, कै नँह लायो नाह ॥ ३४ ॥
मूँछ केस खंडत नहीं, नाक न खंडत कोर ।
पड़ी पुळंतां पाघड़ी, सुकुळीणी तज सोर ॥ ३५ ॥
आपड़ियो मो जेथ अरि, तजिया ससतर तेथ ।
लागा धंधै लेण रै, आयो कुसळे एथ ॥ ३६ ॥
धण सुण थारा धरम सूँ, साबत लायो सीस ।
मोल अबार मँगावसूँ, पाघां बीस पचीस ॥ ३७ ॥
पाघ बजाजां पूछ पी, लेसो मोल मँगाड़ ।
ईजत किण विध आँणसो, पूछूँ हेलापाड़ ॥ ३८ ॥
समर ढिलोकर सांम नूँ, लस आवै लबड़ाक ।
मूँछ थकां मूँडत जिके, नाक थकां बिण नाक ॥ ३९ ॥

---

(३४) सिर रो मुकुट = पगड़ो । ससतर = शस्त्र । सांम = स्वामी । सनाह = कवच । साबत = साबित, अखंड ।

(३५) पुळंतां = भगते समय । पाघड़ी = पगड़ी । सुकुळीणी = अच्छे कुलवाली । सोर = शोर ।

(३६) आपड़ियो = पकड़ा । मो = में, मुझको । जेथ = जहाँ । तेथ = वहाँ । धंधै = काम । एथ = यहाँ ।

(३७) धण = हे स्त्री । थारा = तेरे । मोल = मूल्य से । अबार = अभी । मँगावसूँ = मँगाऊँगा । पाघां = पगड़ियां ।

(३८) बजाजां = कपड़े बेचनेवालों को । पी = हे पति । लेसो = लेओगे । मँगाड़ = मँगाना । किण विध = किस तरह । आँणसो = लाओगे । हेलापाड = जोर से कहकर, पुकार पुकारकर ।

(३९) समर = युद्ध में । ढिलोकर = ढीला देकर, एकाकी

हूँ कुल् में पापी हुवो, पत नूँ दीन्ही पीठ।
तिया पतिव्रत पाल तू, धिक धिक मत कह धीठ ॥ ४० ॥
के खाधा मीठा कवा, प्रीतम जिणरै पास।
तो खाताँ खाराकवा, होजे काँय उदास ॥ ४१ ॥
काँकल् में खारा कवा, मिलि्या नहीं मजाल।
तीर बाँण दीठाँ तठै, लागा गोल्ा लाल ॥ ४२ ॥
खाँवँद कवा खवाड़िया, मीठा लेले मोल।
सहँस गुणाँ मैं सीलिया, बोले मीठा बोल ॥ ४३ ॥
बादल् ज्यूँ सुरधनुष बिण, तिलक बिना दुजपूत।
बनो न सोभै मोड़ बिन, घाव बिनाँ रजपूत ॥ ४४ ॥

छोड़कर। सांम नूं = स्वामी को। लस आवै = भागकर चला आवै। लबड़ाक = लबाली, बकवादी।

(४०) हूँ = मैं। पत नूँ = स्वामी को। धीठ = धृष्ट, जबरदस्त।

(४१) के = कितने ही। खाधा = खाये। कवा = गास, ग्रास, लुकमे। काँय = क्यों।

(४२) काँकल = युद्ध। मजाल = जरा भी। दीठाँ = दिखाई दिए। तठै = वहाँ।

(४३) खावँद = स्वामी ने। खवाडिया = खिलाए। सीलिया = बदले में दिए।

(४४) बादल = मेघ। सुरधनुष = इंद्रधनुष (जो वर्षा के पहिले या पीछे दिखाई देता है)। दुजपूत = ब्राह्मण का पुत्र। बनो = दूलहा, बींद। मोड़ = सेहरा, मोर। (जो विवाह के अवसर पर मुँह के आगे बाँधा जाता है।)

पिसण पीठ खग जो जडूँ, पिसण जड़ै मो पीठ ।
किसूँ नफो कह कामणी, राड़ बजाँयाँ रीठ ॥ ४५ ॥
न लिवूँ हूँ बदलो नियम, असमर बाहो आन ।
साँचा मन सूँ सिखियो, गौरी ब्रह्म-गिनाँन ॥ ४६ ॥
पैलो खोसै पाघड़ी, हँसे दिखालूँ दंत ।
कायर मोनैं क्यों कहै, सुद्ध सुभावाँ संत ॥ ४७ ॥
तैं लारैं तरवार रै, पायो रजक पलीत ।
दीधो खाँवँद नूं दगो, संत नहीं इण रीत ॥ ४८ ॥
काटल आवध मूझ कर, मन मंदाइण व्रन्न ।
आवध राखै ऊजला, मैला ज्याँरा मन्न ॥ ४९ ॥

---

(४५) पिसण=शत्रु । खग=खड्ग । जडूँ=चलाना, वार करना । मो=मेरी । किसूँ=कैसा । नफो=लाभ । राड़=लड़ाई । रीठ=युद्ध । राड़=बजायाँ रीठ=जबरदस्त युद्ध करने में ।

(४६) लिवूँ=लूँगा । असमर=तलवार । गौरी=हे स्त्री ! गिनांन=ज्ञान ।

(४७) पैलो=दूसरा । खोसे=छीने । हँसे=हँसकर । दिखालूँ=दिखाऊँ । मोनैं=मुझको ।

(४८) तैं=तूने । लारै=पीछे । रजक=जीविका । पलीत=चीथड़ों का पुतला, हे नापाक । दगो=धोखा ।

(४९) काटल=काट लगे हुए, जंग चढ़े हुए । आवध=हथियार । मंदाइण=मंदाकिनी गंगा । व्रन्न=वर्ण । ऊजला=साफ, उज्ज्वल । मैला ज्यांरा मन्न=जिनके मन कलुषित हैं अर्थात् जो पापी हत्यारे हैं ।

अधिक सूर कै हूँ अधिक, बनिता समझ विवेक ।
जग सारो मो नूं हँसै, उण सूँ नारद एक ॥ ५० ॥
दल़ ओला पैला दुहूँ, लत्थो बत्थ हुवाह ।
जेथ मुवाजे जीविया, जे जीविया मुवाह ॥ ५१ ॥
पिसणाँ रा सरसूँ पुले, बप मैं लियो बचाय ।
सो बप तैं कुवचन सराँ, घायो अगणत घाय ॥ ५२ ॥
भारथ मत कर भामणी, मो भारथ नँह मेल़ ।
वापी कूप बताव बिस, कै कर म्हासूँ केल़ ॥ ५३ ॥
एकोतरै अठार सै, साँवण दुतियक स्वेत ।
बाँकै ग्रंथ बणावियो, कायर कुजस निकेत ॥ ५४ ॥

इति कायर बावनी ।

भावार्थ—कायर कहता है कि मेरा चित्त शांत है इस कारण मेरे हथियारों पर जंग चढ़ी हुई है। जो पापी हत्यारे हैं वे अपने हथियारों को उज्ज्वल रखते हैं।

(५०) सूर = शूरवीर। बनिता = हे स्त्री।

(५१) दल = सेना। ओला = इधर के। पैला = उधर के। लत्थोबत्थ = लथपथ। जेथ = जहाँ। मुवा = मरे।

(५२) पुले = भागकर। घायो = घायल किया। घाय = घावों से।

(५३) भारथ = लड़ाई। भामणी = हे स्त्री। वापी = बावड़ी। कूप = कूआ। बिस = विष, जहर। कै = अथवा। केल = क्रीड़ा।

(५४) एकोतरै अठारसै = १८७१ संवत्। दुतियक = द्वितीया। स्वेत = शुक्ला।

इति कायरबावनी की टीका समाप्त।

(३) अथ झमाल राधिका सिख-नख-वर्णन

मधुकर भ्रमत सुबास मद, भाल सुधाकर भास ।
मोदक कर मन मोदमय, नितजय ज्ञान निवास ॥
नितजय ज्ञान निवास, पती गणनायकाँ ।
लंबोदर हरनंद सिरोमणा लायकाँ ॥
भामणि श्री ब्रजराज घणाँ हित सूँ भजै ।
सिख नख वरणूँ जास क बुद्धि समापजै ॥ १ ॥
ससि-बदनी तो सिर सरल, मेचक केस मजाँण ।
हिए काँम पावक हुवै, जास धुँवाँ मन जाँण ॥
जास धुँवाँ मन जाण नसाँ मग नीसरे ।
मच्छर अच्छर गात, उडाया मन हरे ॥

---

(१) मधुकर = भ्रमर । भाल = ललाट । सुधाकर = चंद्रमा । भास = शोभायमान । मोदक = लड्डू । मोदमय = आनंद सहित । हरनंद = शिव-पुत्र । घणाँ = अधिक । हित सूँ = प्रेम से । भजै = भजन करती है । जासक = जिसका (यहाँ 'क' पादपूर्त्ति के लिये है, इसी प्रकार आगे भी जानना) । समाप जै = दीजिए ।

(२) ससिबदनी = चंद्र के से मुखवाली । मेचक = काला । तो = तेरे । काँम पावक = कामाग्नि । हुवै = प्रज्वलित है । धुँवाँ = धूम । मन = मानो (उत्प्रेक्षावाचक) । नसाँ = नसों के । नीसरै = निकली हैं । मच्छर = मद, गर्व । अच्छर = अप्सराएँ ।

सोकड़ल्याँ चख माँहि करै कड़वाइयाँ।
ते आँसू टपकंत हिए दुचताइयाँ॥ २ ॥
सित कुसुमाँ गूँथी सुखद, बेणी सहियाँ ब्रंद।
नागणि जाणौं नीसरी, साँपड़ि खीरसमंद॥
साँपड़ि खीरसमंद दुरंग सँवारिया।
धारा फेण कलिंद, तनूंजा धारिया॥
भाषण उपमाँ और मनोरथ भेलिया।
मझ आटी मखतूल क मोती मेलिया॥ ३ ॥
काँन जडाऊ काम रा, कुंडल धारण कीन्ह।
झलहल तारा झूमका, दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह॥
दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह अँधार निकंदवा।
तेजोमय रथ तास निधात पही नवा॥
माँग फूल सिर फूल जड़ाऊ मंडिया।
खिण खिण निरखै नाह, हिए दुख खंडिया॥ ४ ॥

सोकडल्याँ = सौतें, सपत्नियाँ। कडवाइयाँ = बुरी लगती हैं। दुचताइयाँ = दुख होता है।

(३) सित = श्वेत। सहियाँ ब्रंद = सखियों का समूह। साँपडि = स्नान करके। दुरंग सँवारिया = दो रंग बनाकर। धारा = गंगा नदी। कलिंद-तनूंजा = यमुना नदी। भाषण = कहने को। भेलिया = मिलाए। मखतूल = काला रेशम। आटी = बेणी।

(४) काम रा = कामदेव के। झलहल = झलझलाते हुए। झूमका = लटकण। दुहुँ पाखाँ = दोनों पक्षों में, दोनों ओर। अँधार = अंधकार। निकंदवा = नाश करने को। तेजोमय = सूर्य्य।

जड़ियो तिलक जवाँहराँ, जाँणै दीपक जोत।
बालम चीत पतंग बिधि, हित सूँ आसक होत॥
हित सूँ आसक होत भली छवि भालरी।
जुलफ बँधै मन मीन बणी रुख जालरी॥
बरतुल सुछम कपोल रसीली बाँमरा।
किया तयारी वेह दरप्पण काँमरा॥ ५ ॥
काळी भमरावळि कळी, भूँहाँ बाँकड़ियाँह।
कमल प्रभात विकासिया, इसड़ी आँखड़ियाँह॥
इसड़ी आँखड़ियाँह किया म्रग वारणै।
सर मनमथ गा हारि क अंजण सारणै॥
खूबी न रही काय खतंगाँ खंजनाँ।
नेही है मुनिराज विसारि निरंजनाँ॥ ६ ॥

तास = उसके। निघात = विशेषकर। पही = पहिए। नवा = नवीन। खिण खिण = क्षण क्षण। खंडिया = नाश हुआ।

(५) जवाँहराँ = जवाहिरात से। जोत = जोति। बालम = पति। चीत = चित्त। आसक = आशिक, मोहित। भली = श्रेष्ठ। भाल री = ललाट की। जुलफ = जुल्फें। रुख = जैसा। बणी रुख जालरी = जाल सी बन गई। बरतुल = गोल। सुछम = सूक्ष्म। कपोल = गाल। वाम रा = स्त्री का। तयारी = तैयार। वेह = विधाता, विधि।

(६) कळी = कली। भूंहाँ = भँवारे। बाँकड़ियाँह = बाँकी। इसडी = ऐसी। वारणै = न्यौछावर। सर = बाण। मनमथ = कामदेव। गा = गया। अंजण = अंजन, कज्जल। सारणै = लगाने

नाक नवल्ली नारि रै, नकबेसर घणनूर।
मोती ग्रहियाँ चाँच मझ जाँणक कीर जरूर ॥
जाँणक 'कीर जरूर महारस जाँणियो।
बदन निहारै नाह सचाह बखाँणियो ॥
पलकाँ मिलबो पाल उपाव अनंदनैं।
चितवै जांण चकोरक पूरण चंदनैं ॥ ७ ॥
बणियो तिल थारै बदन, नेह रसिक मननार।
तिल ऊपर तिल्लोतमाँ वार दई सौ बार ॥
वार दई सौ बारक फेर बखाँणजै।
जाहर हाटक खान जिसो मुख जाँणजै ॥
सो जिण चौकी दैण मनोभव साखियो।
रूप नरेसुर आपक सीदी राखियो ॥ ८ ॥

से। खूबी = तारीफ। काय = कुछ भी। खतंगा = जहरीला बाण। नेही ह्वै = मोहित होकर। निरंजना = ईश्वर को।

(७) नवल्ली = नवीन। नक = नाक। घणनूर = बहुत सुंदर। चाँच = चंचु, चोंच। कीर = सुवा, तोता। सचाह = इच्छा सहित। पाल = रोकती है। उपाव अनंदनैं = आनंद को पैदा करती है, आनंद हो रहा है। चितवै = देखै।

(८) बणियो = बना हुआ है। थारै = तेरे। जाहर = प्रसिद्ध। हाटक = कंचन, सोना। जिसो = जैसा। चौकी दैण = पहरा देने को। मनोभव = कामदेव। साखियो = जमानत से, साक्षी। नरेसुर = राजा। सीदी = काले रंग का एक जाति का मनुष्य जो विश्वसनीय होता है।

फबै ललाई बिंबफल, परतख अधर प्रबाल़ ।
जपा कुसम जोड़ै जियाँ, भाखै सहियाँ भाल़ ॥
भाखै सहियाँ भाल़ लियाँ कुसभावनै ।
चित पिय कोमल़ ताय बधावै चावनै ॥
महा अणूँ बचनीय जिकाँरी माधुरी ।
दै पिय, रसणाँ दाखि रतीही नाँ दुरी ॥ ९ ॥
संजम जप तप साँपरत, व्रत जुत जोग बिनाँण ।
आँखि तरच्छी ईखताँ, जीता समधा जाँण ॥
जीता समधा जाँण अई नव जोबनाँ ।
मति सूँ देह समेत उपज्जी मो मनाँ ॥
रंभा करै बखाँण तुहालै रूपरा ।
अहराँ दीजै पान अबै किण ऊपरा ॥ १० ॥
दुरै निहारै दंतड़ा, बादल़ दामणियाँह ।
अति ऊजल़ त्याँ आगल़ी, की हीरा कणियाँह ॥

---

(९) परतख = प्रत्यक्ष । अधर = होंठ । प्रबाल़ = मूँगा । जोड़ै = बराबर । जियाँ = जैसे । सहियाँ = सखियाँ । भाल़ = देखकर । कुसभावनै = पतलेपन को । बधावै = बढ़ाती है । चावनै = आनंद को । अणूँ = सूक्ष्म । बचनीय = कहने योग्य । जिकाँरी = जिसकी । दाखि = कह । रती = किंचित् भी । दुरी = छिपी ।

(१०) साँपरत = प्रकट । जुत = युक्त । बिनाँण = तरकीब । तरच्छी = तिरछी, टेढ़ी । ईखताँ = देखते । समधा = साधारण बात है । समेत = सहित । तुहालै = तेरे । अहराँ = होंठों को ।

(११) दुरै = छिपै । दंतड़ा = दाँत । दामणियाँह = बिजली ।

की हीरा कणियाँह अलोकिक कांतरी।
पूछै को कथ कुंदकलीरै पांतरी ॥
बरणी उपमा सार विचारि विचच्छणाँ।
लिया सही अवतार बतीसाँ लच्छणाँ॥ ११ ॥

मंत्र बसीकर मानजै, बाँणी रस बरसंत।
सरसुति बीणाँ प्रगट सुर कोयल लाज करंत ॥
कोयल लाज करंत जगावै कामनैं।
रीझावै अदभूत आतमारामनै ॥
काज सहो बिसराय सुणबो कीजिए।
प्याला श्रवणाँ पूर सुधारस पीजिए॥ १२॥

अधुराँ डसणाँ सूँ उदै, विमल हास दुतिवंत।
सो संध्या सूँ चंद्रिका, फैली जाँण फबंत ॥
फैली जाँण फबंत चकोराँ चाहरी।
उड्डी रज घणसार अनंत उछाहरी ॥

त्यां आगली = उनके आगे, उनके सामने। की = क्या। कांतरी = कांति की। कथ = बात। पांतरी = पंक्ति की। बिचच्छणां = विचक्षणों ने।

(१२) बसीकर = वश में करनेवाला। बांणी = बोली। सरसुति = सरस्वती। कामनै = कामदेव को। सहो = सब। सुणबो कीजिए = सुना कीजिए। पूर = भरकर, पूर्ण।

(१३) अधुरां = होंठ। डसणां = दांत, दंत। उदै = प्रकट हुई। संध्यासूँ = सायंकाल से। चाहरी = जरूरतवाली। उड्डी = बिखरी, फैली। घणसार = कपूर।

विस्व सुबासित होय जिके मुख बासहूँ।
मलियाचल महकंत बसंत बिलासहूँ ॥ १३ ॥
अलक डोरि तिल चड़स वो, निरमल चिबुक निर्वांण।
सींचै नित माली समर, प्रेम बाग पहचांण ॥
प्रेम बाग पहचांण निरंतर पाल ही।
ग्रीवा कंबु कपोत गरब्बाँ गाल ही ॥
कंठसरी बहु क्रांति मिली मुकताहलाँ।
हिंडुल नोसरहार, ज.लूस जलाहलाँ ॥ १४ ॥
बषत मृगासण त्रिपत बिण, देखत रह पिय दीठ।
तिम इंद्रासण बिण त्रिपत, पियकर परसत पीठ ॥
पियकर परसत पीठ घणो सुख पावही।
कदली पत्राकार प्रसिद्ध कहावही ॥
साचों पढबा पाठ सँवारी सोहणो।
मन मथ राजकुँवाँरक पाटी मोहणो ॥ १५ ॥

---

(१४) चड़स = पानी निकालने का चरस। चिबुक = ठोडी। निर्वांण = कूप, कूआं। समर = स्मर, कामदेव। ग्रीवा = गरदन। कंबु = शंख। कपोत = कबूतर। गरब्बां = गर्व को। गालही = नाश करती है। कंठसरी = कठसरी, गले में पहनने का भूषण। मुकताहलां = मोती। हिंडुल = हिलता हुआ। ज.लूस = तेजस्वी। जलाहलां = झलझलाट करता हुआ।

(१५) बषत = समय। मृगासण = मृगासन, मृग के चमड़े का आसन। त्रिपत बिण = बिना तृप्त हुए, बिना इच्छा पूरी हुए। दीठ = दृष्टि। कदली = केला। पत्राकार = पत्ते की शकल का, पत्ते के आकार

भामणिरा सुकमार भुज, साहब गलै सुहाय ।
जाँण नाल जलजातरा, कामपताका काय ॥
कामपताका काय उदै जे अंकड़ा ।
राजस तजि चित रोंसक सोक्याँ संकड़ा ॥
पतपच्छी जुग पाँण सरोरुह पल्लवाँ ।
नग जुत बलय अमोल दिया जे निधनवाँ ॥ १६ ॥
अति ऊँचा तियरै उरज, बणिया बिसवा बीस ।
जोड़ै लागै जगत में, गिर गज कुंभ गिरीस ॥
गिर गज कुंभ गिरीस प्रबीणाँ गाविया ।
सुबरण बरण सुढंग कठोर सुहाविया ॥
सोहै अँगिया ओट हरी रँग साज मैं ।
दुड़िया चकवा दोय सिँवाल समाज मैं ॥ १७ ॥

का । पढबा = पढ़ने को । सँवारी = बनाई । सोहणी = सुहावनी । पाटी = तख्ती, स्लेट ।

(१६) भामणिरा = स्त्री के, राधिका के । गलै = गरदन में । जांण = मानो (उत्प्रेक्षा-वाचक) । नाल = कमल-तंतु । कामपताका काय = कामदेव की ध्वजा का दंड । उदै जे अंकड़ा = विजय के अंक उदय करनेवाली । राजस = राजसी । रोंस = राजरोंस, राज के बड़े बड़े वैभव । सोक्यां = सपत्नियों को । संकड़ा = संकुचित । पतपच्छी = प्रतिपच्छी । सरोरुह = कमल । नगजुत = रत्न सहित । निधनवाँ = निर्द्धियों ने ।

(१७) उरज = कुच । जोड़ै लागै = समानता करना । गिर = गिरि, पर्वत । गिरीस = महादेव का पिंड । अँगिया = कंचुकी । ओट = आड़ में । दुड़िया = दबके हुए, छिपे हुए ।

सुच्छम रोमावलि सुखद, बरणी उकति बिचार ।
सांप्रति रस सिंणगार री, बेल कियो बिसतार ॥
बेल कियो बिसतार मनोभव बागवाँ ।
ईखे नाभि निवाँण उपाई अनुभवाँ ॥
कटि सुच्छमता हूँत लजाँणैं केहरी ।
हरी अणिमा सिद्धि बराबर देहरी ॥ १८ ॥
जंघ अलोम अनूप जुग, नाजुक पणै निघात ।
केलि करीकर कलभ कै, सकनकूर साखात ॥
सकनकूर साषात सराहैं सहचरी ।
काम विरंचि विमास क श्री हथसूँ करी ॥
जेहरि घूघर माल पगाँ झुणकै जियाँ ।
कुंजै बारिज पुंड्र बचा कलहंसियाँ ॥ १९ ॥
सहज ललाई सांपरत, प्रीतम प्यारी पाय ।
निरखे भरमै नायणी, जावक दे मिलि जाय ॥

---

(१८) सुच्छम = सूक्ष्म । सांप्रति = प्रकट में । सिंणगार री = शृंगार की । मनोभव = कामदेव । बागवां = बागबान, माली । ईखे = देखकर । उपाई = पैदा की । अनुभवां = अनुभव से ।

(१९) अलोम = केश-रहित । निघात = विशेष । करीकर = हाथी की सूँड़ । कलभ = हाथी का बच्चा । सकन कूर = एक प्रकार की मछली । सराहैं = प्रशंसा करती हैं । सहचरी = सखियाँ । काम विरंचि = कामदेवरूपी ब्रह्मा । विमास = विचार करके । जेहरि = पायल, पैर का एक जेवर । झुणकै = झनका करती है, बजती है । जियाँ = जैसे । कुंजै = बोलै । बारिज पुंड्र = श्वेत कमल । बचा = बच्चा ।

जावक दे मिलि जाय न जावै जाँणियो।
पै मिलियो जल जाय किसूँ पहचाणियो॥
सुरख सैरोरुह खंड लियाँ सुख साजही।
कै अरुणोदय कांति रही मिलि राजही॥ २० ॥
बणियाँ अणवट बीछिया, पद पल्लव छवि पूर।
की कोमलता रँग कहाँ, चंपकली चकचूर॥
चंपकली चकचूर टली चित चाहसूँ।
नख कमलाँ दल नीर क हीर निबाहसूँ॥
कुसमक ताराँ ब्रंद हुलास हिय करै।
दस तन धरिया काय सुधाधर दूजरै॥ २१ ॥
कटि हंदो करनाटियाँ, जंघा उतकलियाँह।
गो गुज्जरियाँ कुच गरब, केसाँ केरलियाँह॥
केसाँ केरलियाँह बखाँणन कीजही।
किसूँ तिरोहित नारि क, कच्छ कहीजही॥

---

(२०) नायणी = नाइन। पै मिलियो जल जाय किसूँ पहचाणियो = दूध में मिला जल कैसे पहचाना जा सकता है। सुरख = सुर्ख, लाल।

(२१) अणवट, बीछिया = पैर के आभूषण। पद पल्लव = अँगुलियों में। की = क्या। चकचूर = पिस गई। टली = अलग हो गई। काय = कै, अथवा। सुधाधर = चंद्रमा। दूजरै = द्वितीया का।

(२२) कटि हंदो = कमर का। करनाटियाँ = करनाटक देश की स्त्रियों की। उतकलियाँह = उत्कल देश की स्त्रियों की। गो = गया। गुजरियाँह = गुजरात की स्त्रियों का। केरलियाँह = केरल देश की स्त्रियों

बेलाँ तरवर बीटियाँ, दुति कुसुमाँ दरसंत ।
निजर पिंया ब्रज नाहरै, बनमय सदन बसंत ॥
बनमय सदन बसंत अलोक बणाविया ।
गुण सुक पिक कलहंसक मोराँ गाविया ॥
नेह घणौ जिण ठोड़ पधारै नायका ।
गहि बीणाँ सुर गान हुवै जस गायका ॥ २५ ॥
स्याँम नदी काँठै सघण, तरवर स्याँम तमाल ।
संजुत स्यामा सायधण, साहब स्याँम समाल ॥
साहब स्याँम समाल सहेत सहेलियाँ ।
रूड़ै नीर सुगंध धरा रँगरेलियाँ ॥
रति अनुकूल विलास घणाँ रलियामणाँ ।
भीषग दीसै इंद्र लिवूँ हूँ भाँमणाँ ॥ २६ ॥

माँझल = मध्य । बीज = बिजली । बिलागणी = रहनेवाली । रैण = रात्रि । दीवाली = दीपावलि । प्रभा = कांति । दरसीजही = दिखाई देती है ।

(२५) बेलां = लताएँ । तरवर = वृक्ष । बीटियाँ = घेरा डालने से । दुति = कांति । नाहरै = नाथ के, स्वामी के । मय = मुआफिक । सदन = घर । अलोक = अलौकिक । बणाविया = बनाए । सुक = शुक, तोता । पिक = कोयल । मोरां = मयूर । घणौ = अधिक । ठोड़ = स्थान पर ।

(२६) स्याँम नदी = यमुना । कांठै = किनारे । सघण = सघन । संजुत = संयुक्त । स्यामा = राधिका । सायधण = स्त्री । समाल = माला सहित । सहेत = सहित । रूड़ै = अच्छे । रँगरेलियां = रंग बरसाया ।

लहलहती नाचै लता, पवन सँगीती पाय।
पंखाबरदारी करै, रंभ बिचै बणराय ।।
रंभ बिचै बणराय जिल्है दल़ जाहँरा।
नमि नमि द्रुम फल फूल करै नव छाहराँ ।।
आँणे मति अनुसार उकत्ती अंकड़ा।
बाँकै कही झमाल़ बिहारी बंकड़ा ।। २७ ।।

इति झमाल।

रलियामणां = सुंदर। भीषग = भिखारी। दीसै = दिखाई पड़ता है। लिवूं = लेता हूँ। हूं = मैं। भांमणां = बलिहारियां।

(२७) सँगीता पाय = गान-विद्या सीखकर। पंखाबरदारी करै = पंखा हिलाने का कार्य करता है। रंभ = केला। बणराय = बनराय। जिल्है दल़ = पत्तों का तेज। द्रुम = वृक्ष। नवछाहरां = न्यौछावर। आंणे = लाकर। उकत्ती = उक्ति। अंकड़ा = अक्षर। बांके = कविराजा बांकीदास। झमाल़ = एक जाति का गीत, जिसमें प्रथम एक दोहा छंद होता है, दोहे के अंतिम चरण का आगे सिंहावलोकन करके इक्कीस इक्कीस मात्राओं के चार पद रखे जाते हैं। बिहारी बंकडा = हे बांके बिहारी।

नोट—इस 'झमाल' गीत का लक्षण "रघुनाथ-रूपक" में, जो मनसाराम उर्फ मंछ कवि द्वारा रचा गया है, इस प्रकार है—

"दूहै पर चंद्रायणो, धरै उलालो धार।
गीतां रूप झमाल गुण वरणै मंछ बिचार ॥"

इसकी टीका में स्पष्ट इस प्रकार किया गया है—प्रथम तो दोहा छंद कहै फेर चंद्रायणो कहै। दोहा की मात्रा प्रथम पद तीसरे पद में १३ और दूसरे चौथे में ११ होय। चंद्रायणा की एक एक पद में २१ मात्रा होय और प्रत्येक चरण में के अंत में एक गुरु होय ऐसे चार पद होयँ और कुंडलिया की तरह दोहा को अंतिम पद चंद्रायणा का आदि में धरै। (रघु० जीयालाल टीका, पृ० ३१)।

इति झमाल टीका समाप्त।

---

(४) अथ सुजस छतीसी

सेस हिमालय स्रंग, सुरगय हय नय पय दरस ।
रुद्र सिलोचय रंग, जय जय लंकवरीस जस ॥ १ ॥
हुवा जसोधन पुरस जे, इल बड मत अवदात ।
ज्याँरी कही पुराण में, व्यास तपोधन बात ॥ २ ॥
कवियण पौहरै करन रै, नित ले ज्याँरा नाम ।
जिके जसोधन पुरस धन, बाँका करण विराम ॥ ३ ॥
निरवाहै पण आपणो, जे चाहै जस वास ।
माँगण ज्याँहूता मिले, नँह जावही निरास ॥ ४ ॥

---

(१) स्रंग = श्रृंग, पहाड़ की चोटी । सुर = देवता । गय = हाथी । सुरगय = ऐरावत । हय = घोड़ा । नय = नदी, गंगा । पय = दूध । दरस = दृश्य । सिलोचय = पर्वत । लंकवरीस = लंका देनेवाले, रामचंद्र ।

(२) जसोधन = यशस्वी । इल = पृथ्वी । बड = बड़े । मत = बुद्धि । अवदात = उज्ज्वल ।

(३) पौहरै = पहर । करन रै = प्रातःकाल । पौहरै करन रै = प्रातः-काल के समय में । ज्याँरा = जिनका । करण = पाठां०—हरण ।

(४) निरवाहै = निर्वाह करे, पूर्ण करे । पण = प्रण, प्रतिज्ञा । आपणो = अपना । ज्याँहूता = जिनसे ।

ज्याँ जस छत्र तणावियो, माथै जगत मझार।
जिके छत्रधर जाँणणा, सुदताराँ सिणगार॥ ५॥
जस छल जागणहार, धरपुड़ त्यागणहार धिन।
अरुणानुज असवार, कर छाया ज्याँ सिर करै॥ ६॥
लिख लिख बाँचै लोक, के सीखै चरचै किता।
सुणै हरण मन सोक, दाताराँ जस दूहड़ा॥ ७॥
देस सिंध ऊनड़ दियो, दीधो सिर जगदेव।
बाँका जसरै वासतै, दाता नकूँ अदेव॥ ८॥

---

(५) ज्याँ = जिन्होंने। माथै = मस्तक पर। मझार = अंदर। जिके = उनको। सुदताराँ = दानियों के।

(६) धरपुड़ = पृथ्वी का पृष्ठ भाग। धिन = धन्य है। अरुणा-नुज = गरुड़। ज्याँ = जिनके।

भावार्थ—जो यश के लिये छल के समय भी जागता है उसी पृथ्वी त्यागनेवाले को धन्य है। उसके ऊपर भगवान् अपने हाथों से छाया करते हैं।

(७) बाँचै = पढ़ै। के = कितने ही। चरचै = चर्चा करे, आपस में बातें करे। किता = कितने ही। दूहड़ा = दोहे।

(८) ऊनड़—लाखा फूलाणी का रिश्तेदार था। सिंध को जय किया सो ही चारण को दान दे दिया। यह गीत है—

"भाई एहा पूत जँण जेहा ऊनड़ जाम।
दीधी सातों सिंधडी जों दैवै इक गाम॥"
"पाँण पटोलियो झलियो चारण कियो दिवाँण।
ऊनड़ मेल्है आवियो सामूँ ही सुरताँण॥"

जगदेव पँवार—"रासमाला" में इसकी कीर्त्ति वर्णित है। मालवे के

जस वाहै वाहै जिको, माँसाँ चूकी हड्डु।
अखियाताँ बाताँ वचै, जरा काल डर छड्डु ॥ ९ ॥
सदा करै सनमाँन, मीठा बोलै हँस मिलै।
दिए धरा धन दान, जस खाटै ठाकुर जिकै ॥ १० ॥
सोई पुरस सुलच्छणो, सोइ ज पूत सपूत।
सोइज कुलरो सेहरो, ताँडै जस रथ जूत ॥ ११ ॥
ताँत तणंका गायकाँ, ईहग वरण उचार।
सुणै नवो नित निज सुजस, साँचा ऐ सुदतार ॥ १२ ॥

उदयादित्य का छोटा पुत्र था जिसका राज्य संवत् ११४३ तक दिया है। जगदेव सिद्धराज जयसिंह का प्रधान सामंत था। बड़ा दानी और शूर-वीर था। अपना शिर दान में दिया था। बड़ी विजय की थी और दान दिए थे।

नकूँ = कुछ भी नहीं। अदेव = न देने योग्य।

(९) वाहै = प्रहार करना। जिको = जो। मांसां = मांस। चूकी = चूकना। हड्डु = हड्डी। अखियातां = प्रसिद्ध। बातां = बातें। वचै = बचती है। जरा = बुढ़ापा। छड्डु = छोड़कर, पाठां०—चड्डु।

(१०) धन = पाठां०—घर। धरा = पृथ्वी। खाटै = पैदा करे। जिकै = जो।

(११) सुलच्छणो = अच्छे लचणोंवाला। सोइज = वही। कुलरो = वंश का। सेहरो = मुकुट। तांडै = हर्ष से उछलना, गर्जना करे। जूत = जुतकर, लगकर।

(१२) तांत = तांत का वाद्यन्त्र, सारंगी आदि। तणंका = आवाज। ईहग = चारण, कवि। ऐ = यह।

आलस बालो मंगणाँ, उर मंगणाँ उदार।
बंक उदाराँ विसव मैं, बालो जस बिसतार॥ १३॥
कवि पंडित जाहिर करै, मोटाँरौ जस वास।
छोटाँरा जसरो हुवै, पहियाँ हूँत प्रकास॥ १४॥
हातमताई हरख सूँ, पोषंतो पहियाँह।
अमर नाम उणरो, अजै, की जादा कहियाँह॥ १५॥
बालपणै मैं बाजिया, जेहलरा जस ढोल।
न कूँ बसावै कृपण नर, बूढा ही जस बोल॥ १६॥
जस न हुवै धन जोड़ियाँ, धन दीधाँ जस होय।
बीसलदे बीकम तणो, जग में विवरो जोय॥ १७॥

---

(१३) बालो = प्यारा। मंगणाँ = याचकों को। उदार = उदार पुरुष, दानी। विसव = विश्व।

(१४) मोटाँरौ = बड़ों का। पहियाँ = पथिक। हूँत = से।

(१५) हातिमताई = यह फारस देश के ताय नगर का रहनेवाला था और यह दुखी मनुष्यों की बहुत सहायता करता था। इसके नाम पर हातिमताई नामक एक पुस्तक है जिसमें इसका हाल खूब दिया गया है। पोषंतो = पालन-पोषण करता था। पहियाँह = पथिकों का। उणरो = उसका। अजै = आज तक। की = क्या। जादा = अधिक। कहियाँह = कहने से।

(१६) बालपणै = बाल्यावस्था। जेहलरा = जेहा भाराणी के। यह जेहा भाराणी कच्छ के राजा भारमल का पुत्र बड़ा दानी, पराक्रमी और यशस्वी था। नकूँ = कुछ भी नहीं। बूढा ही जस बोल = वृद्ध होने पर भी यश प्राप्त नहीं करते।

(१७) बीसलदे = यह अर्णोराज का पुत्र था। यह बड़ा

जाहर जस खुसबोह जुत, सुदता कुसम सुसोह ;
काँटाँ सूँ भूँडो कृपण, वप अपजस बदबोह ॥ १८ ॥
कृपणाँ जस भावै कठे, विधि विमुखाँनूँ खेद ।
बाँका भोजन नँह रुचै, ज्याँरै वप ज्वर खेद ॥ १६ ॥
कृपणाँ जस भावै कठै, गुरु विमुखाँ नूँ ग्याँन ।
असुराँ दया न ऊपजै, चंचल चित्ताँ ध्यान ॥ २० ॥
मैलो अत अदतार मन, रुच जस तणी रहै न ।
तन कालो विसहर तणो, कंचुक सेत सहै न ॥ २१ ॥

विद्वान् और पंडित-प्रेमी था। इसने अजमेर में बड़ी भारी एक पाठ-शाला बनाई जिसके खँडहर ढाई दिन के झोंपड़े के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह बड़ा विजयशाली और धनशाली था। आना सागर में इसने करोड़ों की संपत्ति गाड़ दी थी इसी से यह प्रसिद्ध है "बीसकोड बीसलदेवाली पड़गी ऊँडै पाणी"। इसने चारण भाट आदि को बहुत दान नहीं दिया इससे इसकी प्रशंसा नहीं करते।

बीकम = यह विक्रमादित्य उज्जैन के चक्रवर्त्ती राजा अत्यंत दानी, शूर-वीर, विद्वान् और संवत्कार हुआ है।

विवरो = विवर्ण ।

(१८) जाहर = प्रकट। खुसबोह = सुगंध। जुत = युक्त, सहित। सुदता = दानी। सुसोह = सुशोभित होता है, वह। काँटाँ सूँ = कंटकों से। भूँडो = बुरा। वप = शरीर। बदबोह = दुर्गंध।

(१६) भावै = अच्छा लगता है। कठै = कहाँ। विधि = ईश्वर, कर्म। विमुखाँनूँ = प्रतिकूलों को, विरुद्ध रहनेवालों को। खेद = दुःख।

(२०) ग्याँन = ज्ञान। असुराँ = राक्षसों को। ऊपजै = उत्पन्न होती है।

(२१) मैलो = मलीन। अत = अति, ज्यादा। रुच = रुचि,

पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन कीधो नहीं।
चित क्यूँ राखै चाह, तिके सरग पावण तणी ॥ २२ ॥
है संबोधन वासतै, बल पिछाँणण वंक।
पिण अदतारॉं नाम नँह, अमर होण इक अंक ॥ २३ ॥
जस गाडा भरियो जुड़ै, जग सो करो जतन्न।
औ आभरणाँ आभरण, रतनाँ सिरै रतन्न ॥ २४ ॥
कृपणाँरी मतवाल की, करसण खारच खेत।
नीर विलोणो है नहीं, दत अन रोगन हेत ॥ २५ ॥

इच्छा। तणी = की। विसहर = सर्प। तणो = का। सेत = सफेद। रहै न = पाठां०—नरेन। सहै न = पाठां०—सदेन।

नोट—सर्प की कंचुकि सफेद होती है किंतु उसका रंग काला होने के कारण वह उसे सहन नहीं करता है और उसे त्याग देता है। और यश को भी कवियों ने सफेद कहा है सो कृपण की सर्प में उत्प्रेक्षा की है।

(२२) पंगी = कीर्ति। कीधो = किया। क्यूँ = क्यों। तिके = वे। सरग = स्वर्ग। पावण तणी = पाने की।

(२३) वासतै = लिये। बल = पुनः, फिर। पिछाँणण = पहिचानने को। पिण = परंतु। अदतारां = सूमों का। नँह = नहीं।

(२४) जुड़ै = इकट्ठा होना। जतन्न = यत्न, उपाय। औ = यह। सिरै = उत्तम।

(२५) मतवाल = नशा, मस्ती, रीझ। की = क्या। करसण = कृषि, खेती। खारच = ऊसर जमीन। विलोणो = विलोड़न करना। दत = दान। रोगन = घी। हेत = वास्ते वा पैदा करनेवाला। यथासंख्य अलंकार।

इक कपि राकस दैत इक, दूणा दोय दुजात ।
यां जिम नांम उदाररो, चिरंजीव सुखदात ॥ २६ ॥
मच्छाँरै जळजीव जिम, सबजी तराँ सदीव ।
अदतारां धन जीव इम, जस दातारां जीव ॥ २७ ॥
साँभळ वित समपै नहीं, बडकाँ तणाँ बखाँण ।
काहू जिका कुलीणता, उर माँझल तू आँण ॥ २८ ॥
साँस छतै जीवै सकळ, ऊमररै आधार ।
जससूँ जीवै जगत में, साँस पखै सुदतार ॥ २९ ॥
आठ पौर जस इंदुरी, जिण घर दुत जागंत ।
तिण घर सूँ अपजस तिमर, अळगा थी भागंत ॥ ३० ॥

---

(२६) कपि = हनुमान् । राकस = राक्षस, विभीषण । दैत = दैत्य । दूणा = दुगने । दोय = दोनों । दूणा दोय = चार । दुजात = ब्राह्मण । यां = इनका । दूणा...दुजात—पाठांतर—हिरणां होयहु जात । यां—पाठां०—ज्यां ।

नोट—संसार में ये सात चिरंजीव माने गये हैं—हनुमान्, विभीषण, बलि, कृपाचार्य, परशुराम, अश्वत्थामा, व्यास ।

(२७) सबजी = हरियाली, तरावट । सदीव = सदैव, हमेशा । तरां = वृक्ष ।

(२८) सांभळ = सुनकर । वित = धन । समपै = देवे । बडकां तणां = पूर्वजों के । बखांण = यश । काहू = क्या, कैसा—अर्थात् वह कुलीन नहीं है ।

(२९) सांस = श्वास । छतै = मौजूद रहने से । पखै = अलग होकर ।

(३०) आठ पैार = अष्ट प्रहर । इंदुरी = चंद्रमा की । दुत = द्युति, कांति । अळगा = दूर । थी = से ।

जसरी गत अदभुत जिका, सत धारियाँ सुहाय ।
नर जीवै नरलोक में, जस अमरापुर जाय ॥ ३१ ॥
कुल्वंती सूँ कीतरो, उलटो है आचार ।
वा न तजै घर आपरो, जग इणरो संचार ॥ ३२ ॥
नर विवने वा नँह रहै, जग में आ रह जाय ।
कुलवंती सूँ कीतरी, उलटी गति इण भाय ॥ ३३ ॥
थियो सदय सुण निज थुई, टीटभ हूत क्रसान ।
उणरा बाल् उबारिया, महामंत्र जस मान ॥ ३४ ॥
दियै पैंड दातार हो, दातारांरै पंथ ।
ग्यानी पुरसाँरा किया, ग्यानी चरचै ग्रंथ ॥ ३५ ॥

---

(३१) गत = गति । अमरापुर = स्वर्ग । सुहाय—पाठां०—सुहुवाय ।

(३२) कीतरो = कीर्ति का । उलटो — पाठां० — ऊंलै (खिलाफ) ।

(३३) नर = पति । विवने = मरने पर । वा = वह कुलवंती स्त्री । नँह रहै = नहीं रहे, सती हो जाती है । आ = यह, यश । इण भाय = इस प्रकार ।

(३४) थियो = हुआ । सदय = दयावान् । थुई = स्तुति । क्रसान = अग्नि । उणरा = उसके । बाल् = बच्चे । यह कथा प्रसिद्ध है कि टीटोडी के अंडों को गजघंट के नीचे और बिल्ली के बच्चों को दाव में भगवान् ने बचाया था ।

(३५) पैंड = कदम । चरचै = चर्चा करे, बातें करे ।

हुवै जेम हरहंस सूँ, वासर कमल़ विकास।
एम धरम जस ह्वै उभै, दत सूँ बाँकीदास॥ ३६॥
सुदता इणनूँ साँभलै, अमी नजर सूँ ईख।
क्रपणाँरो, इण में कुजस, सुजस छतीसी सीख॥ ३७॥
सतो बल़ै जूझै सुभट, करै ग्रंथ कविराज।
दाता माया ऊधमैं, नाम उबारण काज॥ ३८॥

इति सुजस-छतीसी सम्पूर्ण।

---

(३६) हरहंस सूँ = सूर्य से। वासर = दिन। एम = इस तरह। उभै = दोनों। दत सूँ = दान से।

(३७) सुदता = दानी। इणनूँ = इसको। अमी = अमृत। ईख = देखकर। सीख = शिक्षा।

(३८) बल़ै = जले। जूझै = युद्ध करे। उधमैं = खर्च करे, दान दे।

इति सुजस-छतीसी टीका समाप्त।

(५) संतोष बावनी

सोरठा

मन गज जग सर माँहि, लोभ ग्राह बस करि लियो।
तुरत छुडावण ताहि, होय संतोष हरि हमैं ॥ १ ॥

दोहा

बंक तेज कारण वणैं, निहचल तप निरदोष।
ग्यान मोत्त कारण गिणै, सुख कारण संतोष ॥ २ ॥
आथ अटूट अखूट अन, प्रजा घणो सुखपोष।
धन बाँका ऊ ध्रंगड़ौ, साहिब जे संतोष ॥ ३ ॥
सुणै पढ़ै नँह सासतर, सेवै नँह सतसंग।
सुखदायक किम साँपजै, उर संतोष अभंग ॥ ४ ॥

---

(१) मन गज = मनरूपी हाथी। जग सर = संसार-रूपी तालाब। ग्राह = मच्छ। तुरत = शीघ्र।

(२) बंक = बाँकीदास कवि। निहचल = निश्चल, स्थिर। गिणै = माना जाता है।

(३) आथ = अर्थ, धन। अटूट = जो कभी समाप्त नहीं हो, अनंत। अखूट = जो कभी कम न होता हो। अन = अन्न। घणो = अधिक। सुखपोष = सुख से पाली हुई। ऊ = वह। ध्रंगड़ौ = गाँव, ग्राम। ऊ—पाठा०—नँह।

(४) सासतर = शास्त्र। किम = कैसे। सांपजै = उत्पन्न होवे।

सोरठा

तरु संतोष तणेह, नर छाया बैठा नहीं ।
कल्कल्ती किरणेह, बाँका भटकै लोभ बन ॥ ५ ॥
अत चिंता, अभिलाष, परहर मारग पेमरो ।
रे संतोषहि राख, बिण चिंता अभिलाष बिण ॥ ६ ॥

दोहा

बाँका धीरज धरण सूँ, है नहि कुंजर हाँण ।
की घर घर भटका करै, कूकर अधिक कमाँण ॥ ७ ॥
उर नभ जितै न ऊगमै, श्रौ संतोष अदीत ।
नर तिसना किसना निसा, मिटै इतै नँह मीत ॥ ८ ॥
ज्यूं ज्यूँ लालच खार जल्, सेवै दुरमत संग ।
बाँका अत त्यूँ त्यूँ बधै, त्रसनाँ तणी तरंग ॥ ९ ॥

---

(५) तणेह = के । कल्कल्ती = अत्यंत तेज । किरणेह = सूर्य की किरणों में, धूप में । बांका......बन—पाठां०—'बन बन भटकै बाँकला' । बाँकला = बाँकीदास कवि ।

(६) अत = अति । परहर = छोडो । पेमरो = प्रेम का । बिण = बिना । रे...राख —पाठां०—रे सँतोष हरि राख ।

(७) बाँका = बाँकीदास । धरण सूँ = रखने से । कुंजर = हाथी । हाँण = हानि । की करै = क्या कर लेता है । भटका = भटकने से । कूकर = कुत्ता । कमाँण = कमाई ।

(८) जितै = जब तक । ऊगमै = उदय होता है । श्रौ = यह । अदीत = सूर्य । तिसना = तृष्णा । किसना = कृष्ण । निसा = रात्रि । इतै = इधर, (हृदय में) तब तक ।

(९) खार = मृगतृष्णा । दुरमत = खोटी बुद्धिवाला । तणी = की ।

गलो कटावै लोभ यो, लोभी काटणहार।
लीजै काँनी लोभ सूँ, मिल संतोष मझार॥ १० ॥
परवाही पुरसाँ तणी, मेट प्रतीत मनाँह।
वप ऊतरिया चढ़त विष, परवाही पवनाँह॥ ११ ॥
आवै धन ज्याँ, आवियाँ, जिके नवी नित जोड़।
अदभुत गुर लालच अठै, कला सिखावै कोड़॥ १२ ॥
चित सूँ आगम चिंतवै, आ मजबूत उपाध।
बंक जुड़ै नँह वाँछियौ, इण कारण है आध॥ १३ ॥
माँनवियाँ मन बन मँही, लागी लालच लाय।
बाँका इण संतोष विण, बीजै केण बुझाय॥ १४ ॥

---

(१०) गलो = गर्दन। कांनी = कन्नी काटना, अलग हटना। मझार = में, अंदर।

(११) परवाही = परवा रखनेवाला, खुशामदी। पुरसां तणी = मनुष्यों की। प्रतीत = विश्वास। मनांह = मन में। वप = शरीर। परवाही = पूर्व दिशा की। पवनांह = हवा से।

(१२) ज्यां = जिनकी। आवियां = उत्कट इच्छा, आने से। जिके = जो। नवी = नवीन। गुर = गुरु। अठै = यहां।

(१३) आगम = धनागम। आ = यह। उपाध = उपाधि, दुःख। वांछियौ = इच्छित (पाठां०—वांरियो)। इण = इस। आध = आधि, अर्द्ध।

(१४) मांनवियां = मनुष्यों के। मँही = में। लाय = अग्नि। बीजै = दूसरा (पाठां०—दोजै)। केण = कौन।

लालच री दौड़ै लहर, भवन बियाँ धन भाल ।
बैठो थावर बारमो, काँधै आण कराल ॥ १५ ॥
गह चढिया संतोष गज, धर पड़ ज्याँनूँ धोक ।
चढिया ज्याँनूँ चहरजे, लालच गरधभ लोक ॥ १६ ॥

सोरठा

लालच रसरै लाग, माँखी लपटाणी मधू ।
उडणो बलियो आग, जिणरै मुसकल जीवणो ॥ १७ ॥
भव दरियाव भयंद, लहराँ ऊठै लोभरी ।
माँहे ज्याँ मतमंद, मनख घणाँ डूबै मरै ॥ १८ ॥

दोहा

के प्रपंच कुपिया करै, रुपिया जोडण रोक ।
परपीड़ा पेखै नहीं, ऐ लोभीड़ा लोक ॥ १९ ॥

---

(१५) भवन...भाल—पाठां०—भवन वियाँ बन लाल । दौड़ै—पाठां०—दीजे । भाल = देखकर । थावर = शनिश्चर । बारमो = बारहवाँ । कांधै = कंधे पर । आण = आकर ।

(१६) गह = ग्रहण कर । धर पड = पृथ्वी पर गिरकर । धोक = नमस्कार करना । चहरजे = निंदा करनी चाहिए ।

(१७) रसरै = रस के । मांखी = मक्खी । बलियो = पटकना, रखना; जल गया । आग = दूर, अलग; अग्नि । उडणो बलियो आग = उड़कर जाना तो दूर रहा । जिणरै = उसके । मुसकल = कठिन । जीवणो = जीना ।

(१८) भव = संसार । भयंद = भयंकर । ज्यां = जिसमें । मतमंद = मूर्ख । मनख = मनुष्य । घणां = बहुत ।

(१९) कुपिया—पाठां०—रुपिया । के = कितने ही । कुपिया =

आथ धरै घर औररी, वयरा इस्ट दे बीच ।
आ आछी न करै अठै, न दिये पाछी नीच ॥ २० ॥
आँणे मोती अबर सूँ, चीण फिटक चित चाय ।
रोहिण गिर खोजै रतन, सिंघलदीप सिधाय ॥ २१ ॥
जेथ बरफ बरसै जमै, परबत सिखराँ पंत ।
बंक सियालै लोभबस, भालै चीण भुटंत ॥ २२ ॥
आँणै हिलवी आदरस, वोह यमनी बोदार ।
हाथी झरता हबसरा, कसतूरी तातार ॥ २३ ॥

क्रोध करके, चुपचाप, छुपे छुपे । रुपिया = रुपये । रोक = रोकडी । परपीड़ा = परदुःख । ऐ = ये ।

(२०) आथ = अर्थ, धन । औररी = दूसरे की । इस्ट = इष्टदेव । आ = यह । आछी = अच्छी । अठै = यहां । पाछी = वापिस ।

(२१) चीण = चीन देश । फिटक = स्फटिकमणि । रोहिण गिर = एक पर्वत जहां रत्न होते हैं । सिधाय = जाकर ।

(२२) जेथ = जहाँ । पंत = पंथ, मार्ग । सियालै = जाड़े का मौसम; सिवालक के पहाड़ जो बर्फ से सदा ढके रहते हैं । भालै = देखै । भुटंत = भूटान ।

(२३) आंणे = लावै । हिलवी = हलब देश का । आदरस = आदर्श, दर्पण । वोह = बहुत । यमनी = यमन देश का । बोदार = इत्र । झरता = मद झरता । हबसरा = अफ्रीका देश का । तातार = एक देश का नाम जहाँ की कस्तूरी प्रसिद्ध होती है, जिसे मुश्के तातार वा नाफे तातार कहते हैं ।

छाछ कवाँण खुदंग सर, समसेराँ ईरान।
आणै अस ऐराक सूँ, थटण घणो धन थान॥ २४॥
धज फरकावै जीवतो, जोड़ कोड़ धन रोक।
नाँखै मर उण ठौड़ नर, नाग हुवै निरमोक॥ २५॥
मोल मगाड़ै चंद्रमण, दहण सुथंभण दाह।
दाह हिए लालच दहण, जतन न थंभण जाह॥ २६॥

सोरठा

आवै जो अकलीम, सात हेक सुरताँणरै।
नहीँ जिका दे नीम, ईछै लेवा आठमी॥ २७॥

---

(२४) छाछ = चाच देश। कवांण = कमान, धनुष। खुदंग = देश का नाम। समसेरां = तलवारें। अस = अश्व, घोड़ा। ऐराक सूँ = राक से, जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं। थटण = संग्रह करने को।

(२५) धज फरकावै = नगर-सेठ हो जाय। कोड़ = क्रोड। नाँखै = रखे पटकै। उण = उस। ठौड़ = जगह। निरमोक = योनि छोड़कर, मनुष्य-योनि छोड़कर, निश्चय ही।

(२६) मँगाड़ै = मँगावे। चंद्रमण = चंद्रकांतमणि। दहण = अग्नि। सुथंभण = रोकने के लिये, बुझाने को। दाह = जलन। जाह = जिसका।

(२७) अकलीम = बादशाहत। हेक = एक। सुरतांणरै = बादशाह के। नीम = नींव, मजबूती; आधा। ईछै = इच्छा करे। आठमी = आठवीं। यह गुलिस्तां के शेर का अनुवाद है।

दोहा

जो तू चाहै मुकत फल, धूनाँ मन धीरच्छ।
तोष मानसरवर तठै, माल हुवै मा मच्छ ॥ २८ ॥
पोहचै काला पाणियाँ, हेम भरेबा हाट।
छाती लालच छाकियाँ, करड़ी बजर कपाट ॥ २९ ॥
नर संपत विलसै नहीं, जाझा दुख सूँ जोड़।
लियो परख लालच लहर, खरी बुरी आ खोड़ ॥ ३० ॥
हेक रती नँह हालियो, सोनो रावण साथ।
लेजावण लोभी करै, आथ साथ असमाथ ॥ ३१ ॥
यल ऊपर लोभी अपत, नँह राखै निज नाम।
यल भीतर खाटे अधम, दाटे राखै दाम ॥ ३२ ॥

---

(२८) धूनाँ = उन्मत्त। धीरच्छ = धैर्य्य रख। तठै = वहाँ। मा = नहीं। माल = माल्ह, आनंद कर।

हे उन्मत्त मन हंस! यदि तू मुक्ति मोती चाहता है तो संतोषरूपी मानसरोवर में हंस ही रह उसमें मच्छ मत बन।

(२९) हेम = सोना। भरेबा = भरने के लिये। छाकियाँ = तृप्त हुए, छके हुए। करड़ी = कठिन, सख्त।

(३०) जाझा = अधिक। खरी = सच्ची। आ = यह। खोड़ = रोग।

(३१) हेक = एक। हालियो = चला। आथ = धन, द्रव्य। असमाथ = असमर्थता।

(३२) यल = पृथ्वी। अपत = पुत्र; अप्रतिष्ठित; निर्लज्ज। खाटे = पैदा करके। दाटे = दबाकर।

सोरठा

चढिया जे कर चाह, लालच घोड़ै ललकणें ।
बाँका ह्वै बदराह, पड़िया दीठा पुरषड़ा ॥ ३३ ॥

दोहा

नाचै लाज निवार नित, बाँका जाण बनोक ।
जग में भटकै स्वान जिम, लोभ तणैं बस लोक ॥ ३४ ॥
नागलोक नरलोक की, नँह सुरलोक समाय ।
जेथ तेथ प्राणी जलै, लालच हंदी लाय ॥ ३५ ॥
लोभी कापड़ ढक्किया, तोपिण उरियाँ तेह ।
है उरियाँ ही ढँक्किया, जन संतोषी जेह ॥ ३६ ॥
वायक सतगुर वैदरो, घणो करै हित घोष ।
रै इण लालच रोगरो, सद औषद संतोष ॥ ३७ ॥

---

(३३) चाह = इच्छा । ललकणें = कूदते हुए । बदराह = कुमार्ग । दीठा = दिखाई पड़े ।

(३४) निवार = छोड़कर । बनोक = बंदर । भटकै = डोलते फिरते हैं । तणैं = के ।

(३५) नरलोक = पृथ्वी । जेथ = जहाँ । तेथ = तहाँ । हंदी = की । लाय = अग्नि ।

(३६) कापड़ = कपड़े, वस्त्र । तोपिण = तो भी । उरियाँ = नंगे । तेह = वह । जेह = जो ।

(३७) घणो = अधिक । घोष = घोषित । इण = इस । सद = सच्चा ।

हिये बसाई हरख सूँ, मधुसूदन महाराज।
नर जिणसूँ ललचै नहीं, सो त्रिभुअण सिरताज ॥ ३८ ॥
गुरु प्रसाद संतोष गज, जे नर बैठा जाय।
जग लालच कूकर जियाँ, लाल़ सकै न लगाय ॥ ३९ ॥

सोरठा

जे संतोष सुमेर, चढ़ बैठा मानव चतुर।
देख नवै ज्याँ देर, कुवचन सर लागै कठै ॥ ४० ॥

दोहा

सबर राख कुसमै समै, कासूँ घबर करीस।
खिण खिण ले जगची खबर, जबर सगत जगदीस ॥ ४१ ॥
जग संतोष तुषार नर, बसै निरंतर बंक।
तियाँ लोभ ग्रीषम तणी, सुपनै ही नँह संक ॥ ४२ ॥

---

(३८) मधुसूदन = विष्णु। जिणसूँ = जिससे। त्रिभुअण = त्रिभुवन, तीनों लोक।

(३९) लाल़...लगाय—पाठां०—लाल सकै नँह लाय। कूकर = कुत्ता। जियाँ = जैसे। लाल़ = राल, पतला थूक।

(४०) देख...देर—पाठां०—देख नजर ज्यां देर। सर—पाठां०—रज। देर = देकर, मारकर। सर = बाण। कठै = कहां।

(४१) सबर = संतोष। कुसमै = बुरे समय पर। समै = अच्छे समय पर। कासूँ = किससे। घबर = घबराहट। करीस = करै। खिण खिण = क्षण क्षण। जगची = संसार की। जबर = बलवती। सगत = शक्ति।

(४२) जग—पाठा०—नर, नग। तुषार = ठंडक, ठंडे

सिध साधक राखै सबर, सबर तजै मतमंद ।
सबर काज सुधरै सहू, साँई सबर पसंद ॥ ४३ ॥
जिण दिन ओ मन जाणसी, सोनो धूड़ समान ।
उण दिन सूरज ऊगसी, सोनारो सुखदान ॥ ४४ ॥
जग थित भूठी जाणणी, मूठी भीड़ म रख्ख ।
माया मेवो माडुवाँ, चंगा चाखव चख्ख ॥ ४५ ॥

सोरठा

दुज जंगम दुरवेस, जोगी संन्यासी जती ।
लोभ न राखै लेस, बाँका उणनूँ बंदिये ॥ ४६ ॥

जल के कण । निरंतर = लगातार । बंक = बाँकीदास । तियाँ = उसको । तणी = की । सुपने ही = स्वप्न मे भी । संक = शंका ।

(४३) सिध = सिद्ध पुरुष । सहू = सब । साँई = मालिक, ईश्वर ।

(४४) जिण = जिस । ओ = यह । जाणसी = जानेगा । धूड़ = धूल, मिट्टी । उण = उस । ऊगसी = उदय होगा । सोनारो = स्वर्ण का । सुखदान = सुखदाई ।

(४५) थित = स्थिति । मूठी = मुष्टिका । भीड़ = दबाकर । म = मत । माडुवाँ = मनुष्य । चंगा = उज्ज्वल चित्तवाले । चाखव = खिलावो ।

(४६) जंगम—पाठां०—रंगम । दुज = द्विज, ब्राह्मण । जंगम = एक संप्रदाय के साधु । दुरवेस = दरवेश, फकीर । लेस = लेशमात्र, किंचित् भी । बाँका = बाँकीदास कवि । उणनूँ = उसको ।

दोहा

ज्याँरै खांख विछावणो, ओढणनूं आकास।
ब्रह्म पोष संतोष वित, पूरण सुख त्याँ पास॥ ४७॥

खलक मँही वै खोजणाँ, सुच प्रसन्न सुख संत।
धार जिके संतोष धन, विण परवाह बसंत॥ ४८॥

बाँका हरष न व्रधि सूँ, हाण हुवाँ नँह सोक।
हरि संतोष दियै हिये, तिणनूँ दीध त्रिलोक॥ ४९॥

आया जेथ प्रसन्न ह्वै, वधै घटै नँह व्रत्त।
प्रभु राखै उण पाँखड़ो, सदा अमीणों सत्त॥ ५०॥

बाँका वेद पुराण बिच, सायद आ छै सूत।
सुख संतोष सराहियो, आपदत्त अवधूत॥ ५१॥

---

(४७) पोष--पाठां०--घेव। वित--पाठां०--बिन। ज्याँरै = जिनके। खाख = मिट्टी। ओढणनूँ = ओढ़ने को। पोष = शरण, आधार। वित = धन। त्याँ = उनके।

(४८) खलक......सुख संत—पाठां०—पिला केण उचखो चणा सुयप रत्न मुख संत। खलक = संसार। मँही = में, अंदर। खोजणाँ = तलाश करना चाहिए। सुच = पवित्र। विण = बिना।

(४९) व्रधि सूँ = वृद्धि से, बढ़ती से। हाण = हानि, नुकसान। तिणनूँ = उसको।

(५०) व्रत्त—पाठां०—वृत्त। सत्त—पाठां०—चित्त। जेथ = जहाँ। उण = उस। पाँखडी = पंखडी। अमीणों = हमारा।

जो आ जाय उसी में प्रसन्न रहूँ और मेरे चित्त की वृत्ति कभी घटे बढ़े नहीं, ईश्वर मेरा सत्त इसी पंखडी पर रखे।

(५१) सायद = साक्षी। आ = यह। छै = । सूत = ऋषि का

लालच बल़ती लाय में, बाल़ो बडी बलाय।
बहती नदी बहाय द्यो, ह्वै राजी हरिराय ॥ ५२ ॥
मन संतोष प्रकासवै, बन श्रीखंड विकास।
आल़स उरग न आभड़ै, तो की कहणो तास ॥ ५३ ॥
सा पुरषाँ संतोषिया, खाँणाँ जवहरषाँण।
बेलाँ चित्रा बेलड़ी, पारस सयल़ पखाँण ॥ ५४ ॥
अट्ठारासै अठंतरे मोजी फागण मास।
सुद तेरस संतोष गुण, बरणे बाँकीदास ॥ ५५ ॥

इति संतोष बावनी समाप्त।

नाम। सराहियो = प्रशंसा की। आपदत्त = दत्तात्रेय महामुनि। अब-धूत = जोगी, महामुनि।

(५२) बल़ती = जलती हुई। लाय = अग्नि। बाल़ो = जलाओ। बहाय द्यो = बहा दो।

(५३) श्रीखंड = चंदन। उरग = सर्प। आभड़ै = लिपटे नहीं। की = क्या। तास = उसका।

(५४) सा = अच्छे। खाँणाँ = खानों में। जवहर = जवाहिरात। बेलाँ = बेल, लता। चित्रा = एक प्रकार की उत्तम बेलड़ी। बेलड़ी = बेल, लता। सयल़ = शैल, पर्वत। पखाँण = पत्थर।

(५५) अट्ठारासै अठंतरे = १८७८ संवत्। बरणे = वर्णन किया।

इति संतोषबावनी की टीका सम्पूर्ण।

(६) अथ सिधराव-छतीसी

मोताहल मय छत्र सिर, मानसरोवर राय।
देवी गूजरखंडरी, श्रीबहिचरा सहाय ॥ १ ॥
कुंजर जिणरै श्रीकलस, अलहणपुर आथाँण।
सो चालक जैसिंघदे, गूजर वै सुरताँण ॥ २ ॥
तो चरणाँ लागै तिको, चालक करन सुजाव।
नर गरिमा महिमा लहै, साँचौ तूँ सिधराव ॥ ३ ॥

---

(१) मोताहल = मोती। मानसरोवर = जयसिंह की माता मीलनदेवी का बँधाया हुआ बड़ा तालाब वीरम गाँव के पास है। गूजरखंडरी = गुजरात देश की। श्रीबहिचरा = श्रीबहूचरा एक देवी हैं जिनका मंदिर आबू पर है।

(२) कुंजर = हाथी। जिणरै = जिसके। श्रीकलस = जयसिंह सिद्धराज के हाथी का नाम। "रासमाला" गुजराती (पृ० १५६) में इसके हाथी का नाम "यश-पटह" लिखा है। अलहणपुर = अन्हिलवाडा, यह जयसिंह सिद्धराज की राजधानी थी। आथाँण = स्थान। चालक = चालुक्य क्षत्रियों की एक शाखा जो सोलंकी प्रसिद्ध है। जैसिंघदे = अन्हिलवाडे का राजा। गूजर = गुजरात। वै = वाला, का। सुरताँण = बादशाह, सम्राट्।

(३) तिको = वह। सुजाव = पुत्र। सिधराव = अन्हिलवाडे का राजा जिसका पूरा नाम जयसिंह सिद्धराज था। करन = कर्ण, जयसिंह का पिता।

नगर नाम उपनाम निज, तैँ चालक जैसीँग।
रुद्र महालय सूँ किया, धर पुड़ साँचा धीँग॥ ४ ॥

सोरठा

गुडि श्रीकल़स गयंद, चाल़क तूँ जिण दिस चढै।
उण दिसरा नरयंद, सकल़स आवै सामहाँ॥ ५ ॥

दोहा

रेवा सागर अमल में, आगै हो अरड़ींग।
हमैं सिंघ सागर हठी, अपणायो तैँ सींग॥ ६ ॥
तैं गज गुडियो श्रीकल़स, बिच दल़ करूँ बखाँण।
गिर कुल़ रूप सपंख गिर, जल़निधि माँझल़ जाँण॥ ७ ॥
कोकन सिर खड़िया कटक, तैं सिधराव अभंग।
दिन सकुचीजै कोकनद, कोक न कोकी संग॥ ८ ॥

---

(४) महालय सूँ = महादेव का मंदिर। धर पुड़ = पृथ्वी पर। धींग = जबरदस्त, साहसी।

(५) गुडि = चलाकर। गयंद = हाथी। उण = उस। नरयंद = राजा लोग। सकल़स = सब कलश लेकर। सामहाँ = सम्मुख।

(६) रेवा सागर = रेवा नदी से सागर देश तक वा समुद्र तक। अमल में = अधिकार में। अरड़ींग = जबरदस्त। हमैं = अब। सिंघ = जोड़े देश के सिंघ नाम के राजा को जीता अथवा जयसिंह सिद्धराज। सींग = पशु वा शृंगवेरी देश दक्षिण में।

(७) दल़ = फौज। सपंखगिर = परवाला पर्वत जैसे समुद्र में दौड़ रहा हो (ऐसा तेरा हाथी दौड़ता है और विजय कराता है)।

(८) कोकन = कोंकण देश दक्षिण में। खड़िया = चलाए।

सहियौ नँह जैसिंघदे, सज्य असज्य प्रताप।
सबला दल रोक न सकै, दे कोकन तज दाप ॥ ९ ॥
लीधो दल परमार दल, आबू भोलेराव।
गाजे जादव देवगिर, लीधो करन सुजाव ॥ १० ॥
जोरावर तपियो जठै, भूपत जादव भाँग।
गाँजै तूँ सो देवगिर, गूजर वै सुरताँग ॥ ११ ॥
बींधा राघव एक सर, सात ताल इम सींग।
सात देस कोकन लिया, इक प्रताप सूँ धींग ॥ १२ ॥

कटक = फौज। सकुचीजै = संकुचित होते हैं। कोकनद = कुमुदिनी। कोक = चकवा। कोकी = चकवी (लशकर की धूलि उड़ने से दिन की रात हो जाती है)।

(९) सज्य असज्य = सजे और बिना सजे। सबला = बलवान्। दाप = गर्व।

(१०) भोलेराव = भोला भीम, दूसरा भीम, जो इसी सोलंकी वंश में बड़ा प्रतापी हुआ और जिसको भोला भीम भी कहते हैं। यह सोमेश्वर और पृथ्वीराज चौहान से लड़ा था। १२३५ से १२९८ तक राज्य किया था। देवगिरि = देवगिर के यादवों को हराया। यह दक्षिण में यादवों का बड़ा राज्य था।

(११) जोरावर = जबरदस्त, बलवान्। भूपत = भूपति राजा। जादव = क्षत्रियों की एक शाखा। भाँग = यादव राजा। गाँजै = नाश किया वा गर्व-गंजन किया। देवगिरि नगर महाराष्ट्र देश में यादव राजाओं का प्रसिद्ध नगर था।

(१२) बींधा = बेधन किए, छेदे। सींग = जयसिंह सिद्धराज। सात देस = कोंकण देश के सात परगने का खंड। धींग = बलवान्, प्रतापी।

ले लच्छी मरहट्टरी, गूजर खंड अधीस ।
आय महालच्छी चरण, सींग नमायो सीस ॥ १३ ॥
कवि आखर ज्यूँ करन तण, मरहट्टी महिळाव ।
कुच आधा ढकिया निरखि, रीधौ चाळक राव ॥ १४ ॥
द्रविड़ कियो दहबाट तैं, रूठै चाळक राँण ।
पाया गूजर खंड पत, क्रतमाळा केकाँण ॥ १५ ॥
कहिया था आगै कथन, समझ प्रभाकर भट्ट ।
साँचा कीधा सींग तैं, अंध्र करे दहबट्ट ॥ १६ ॥
पह चाळक धनवंत पुर, लाँठै लूट लियाह ।
काँठै नदी कवेरजा, खेमा खड़ा कियाह ॥ १७ ॥

---

(१३) लच्छी = लक्ष्मी । मरहट्टरी = महाराष्ट्र देश की । अधीस = स्वामी । महालच्छी = महालक्ष्मी, जयसिंह की इष्टदेवी ।

(१४) आखर = अक्षर । करन तण = कर्ण का पुत्र । महिळाव = स्त्रियों के । आधा = अर्द्ध । रीधौ = प्रसन्न हुआ । चाळक राव = चालुक्य राजा जयसिंह सिद्धराज । (लाट देश की स्त्रियों की प्रशंसा है ।)

(१५) दहबाट = नाश । रूठै = रुष्ट होने पर । क्रतमाळा — कीर्त्ति की विजय-माल । केकाँण = घोड़ा ।

(१६) आगै = पहले । प्रभाकर भट्ट = यह प्रसिद्ध मीमांसक हुए हैं जो शंकराचार्य के समकालीन हैं । अंध्र = आंध्र देश दक्षिण में, जो गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में है ।

(१७) पह = राजा । धनवंत = मालदार, धनवान् । लाँठै = जबरदस्ती । काँठै = किनारा, पास । कोल देश के पास कावेरी नदी है वहाँ फौज का डेरा किया ।

सिंधुर मदझर सिद्धरा, ऊखेड़ै बणराय।
तज कावेरी कमल बन, छपदाँ लीधा छाय॥ १८॥
कावेरी जल श्रीकलस, धसियो सनमुख धार।
ऐरावत किर आवियो, मंदायिणी मझार॥ १६॥
कर सूँ कमल कवेरजा, निज सिर नाँखै नाग।
पितनूँ कमलाँ पूजही, बारण मुख बड भाग॥ २०॥
राजा दूजो मूलरज, दिखणाताँ दल लोप।
अडर मलैगिर आवियो, सुरपत जेम सकोप॥ २१॥

---

(१८) सिंधुर = हाथी। सिद्धरा = सिद्धराज जयसिंह का। ऊखेड़ै = उखाड़ फेंकता है। बणराय = सिंह, वृक्ष को। कावेरी = नदी। कमल बन = वन जिसमें कमल बहुत हैं। छपदां = भौंरे। लीधा छाय = छा लिया।

(१६) किर = मानो, समान। मंदायिणी = मंदाकिनी, स्वर्ग की गंगा। मझार = में, अंदर।

(२०) कवेरजा = कावेरी नदी। नांखै = डाले। नाग = हाथी पितनूँ = पिता को, महादेव को। कमलां = कमलों से। बारण = हाथी बारणमुख = गजानन, गणेश।

(२१) दूजो = दूसरा। मूलरज = मूलराज चालुक्यों का प्रथम राजा था जिसने अपने मामा सामंत सिंह चावडे को मारकर अन्हिल-वाडे का राज्य लिया था। यह बड़ा वीर और प्रतापी हुआ था। इसने सं० ६६८ से १०५३ तक राज्य किया। दिखणातां = दक्षिण के। दल = फौज। सुरपत = इंद्र।

(२२) पैठा = घुस गए। नाग = सर्प। पयाल मैं = पाताल में। तर = तरु, पेड़। नागाँ = हाथियों की। पोगर = सूँड। नाग = सर्प।

पैठा नाग पयाल़ मैं, तर चंदण कर त्याग।
चाल़क चंदण लपटिया, नागाँ पोगर नाग॥ २२॥
चाल़करा गज चील़मण, निज कर माँहि लियंत।
मोताहल़ मय कुंभरै, ऊपर वार दियंत॥ २३॥
पोगर दाँतूसल़ धकै, डाल़ बचै नँह डंड।
कुंजर चाल़करा करै, खंड खंड श्रीखंड॥ २४॥
सिंधुर गाजै सिद्धरा, आयो किर आसाढ।
ऐतकियौ आसाढ नूँ, रद आसाढ़ो चाढ॥ २५॥

चंदण से सर्प तो डरकर भग गए और जयसिंह के हाथियों की सूँड़ें जो चरणों से लिपटीं सो ही मानों सर्प हो गए।

(२३) चील़मण = सर्प की मणि। मोताहल़ = मोती। वार दियंत = न्यौछावर करके फेंक देते हैं।

(२४) पोगर = सूँड़। दाँतूसल़ = दाँत। धकै = सम्मुख। श्रीखंड = चंदन।

(२५) सिंधुर = हाथी। सिद्धरा = सिद्धराज के। किर = मानों, उत्प्रेक्षावाची। ऐ = यह। तकियौ = देख लिया। रद = दाँत। आसाढ़ो = सफेदी। चाढ = चढ़ाकर।

भावार्थ—सिद्धराज जयसिंह के हाथियों ने इस प्रकार गर्जना की कि मानो आषाढ़ ही आ गया हो। अब ऐसा ज्ञात होता है कि इन्होंने (हाथियों ने) अपने दांतों की सफेदी चढ़ाकर अर्थात् अपने शरीर के काले रंग और अपनी गर्जना के साथ दाँतों की सफेदी मिलाकर—मेघों सा रूप बनाकर—आषाढ को यानी आषाढ़ के मेघों को (विजयार्थ) देख लिया अर्थात् मेघों से मुकाबला किया।

जेथ मलै तर मेखचा, गडै मलै तर मेख।
जलै मलै तर ईंधणा, दल चालकरो देख॥ २६॥
सेख सैंण आगै अरज, केरलनाथ करंत।
आवण नहँ दीजै अठै, गूजर वै बलवंत॥ २७॥
भूप जड़ावै मुगट मझ, रोहण गिर उतपत्त।
निस दीपग प्रतिनिध रतन, प्रभा अपूरब भत्त॥ २८॥
कूँभाथल मोताहलाँ, भरिया वप गिर भाँत।
चंद्र वरण गज रतन मैं, बंगड़ बणिया दाँत॥ २९॥
अलियल सहज सुबास बस, रहै निकट दिन रात।
हिमकर बदनी हंस गत, जुवती पदमण जात॥ ३०॥

---

(२६) जेथ = जहाँ। मलै = मलय, चंदन। तर = तरु, पेड़। मेखचा = मेखठोका, भारी हथौड़ा लकड़ी का। जलै = जलता है। ईंधणा = ईंधण।

(२७) सेख = उस समय का कोई मुसलमान। राजा वा बादशाह। केरलनाथ = दक्षिण में केरल देश का राजा। अठै = यहाँ पर। गूजर वै = गुजरात के पति।

(२८) मझ = अंदर। रोहणगिर = एक पर्वत। उतपत्त = उत्पन्न हुई वस्तु, रत्न। भत्त = भाँति।

(२९) कुंभाथल = कुंभस्थल। मोताहलाँ = मोती। वप = वपु, शरीर। भाँत = भाँति, तरह। बंगड़ = बंध जो दाँतों पर हाथी के (न फटने के लिये) लगाते हैं।

(३०) अलियल = भौंरे। हिमकर = चंद्रमा। गत = गति, चाल। जात = जाति।

राजा सिंहल दीपरे, तोनूँ दीध त्रसींग।
खितपुड़ गूजर खंडरा, सिंघ बधे तैँ सींग॥ ३१॥
पूताँ जायाँ कवण गुण, अवगुण कवण धियाँह।
जावा न दियौ प्रगट जग, सिंघल सिंघ जियाँह॥ ३२॥

---

(३१) त्रसींग = जबरदस्त। खितपुड़ = (क्षिति-पट) पृथ्वीतल। सींग = बहादुरी, हौसला।

भावार्थ—यहाँ ३०वें और ३१वें दोहे का एक साथ भावार्थ लगेगा)। पद्मिनी जाति की युवती को, जिसका मुख चंद्रमा के सदृश है और चाल हंस की सी है और जिसकी स्वाभाविक शरीर की गंध से भौंरे रात-दिन उसके पास रहते हैं, सिंघल द्वीप के राजा ने तुझको जबरदस्त समझकर दिया। हे सिद्धराज, जैसे जैसे विजयार्थ तू आगे बढ़ता है वैसे वैसे गुजरात की भूमि और तेरा हौसला बढ़ता जाता है।

(३२) पूताँ = पुत्र। कवण = कौन। धियाँह = पुत्रियाँ। जियाँह = उन्होंने, पुत्रियों ने।

भावार्थ—संसार के अधिकांश भाग में यह रीति है कि पुत्र होने पर मनुष्य खुशी मनाते हैं और पुत्री होने पर विशेष प्रसन्न नहीं होते। इस दोहे में उसी का उल्लेख किया गया है।

पुत्रों के जन्म लेने से तो क्या गुण उत्पन्न होते हैं (जो प्रसन्नता होती है) और पुत्रियों के जन्म से क्या अवगुण उत्पन्न होते हैं (जो विशेष प्रसन्न नहीं होती)? देखो पुत्रियों से यह बड़ा भारी लाभ हुआ। कि उन्होंने सिद्धराज जयसिंह को सिंघल में जाने नहीं दिया यह बात सब संसार जानता है। (सिंघल के राजा ने जयसिंह को अपनी पुत्री ब्याही थी यहाँ उसी की तरफ इशारा है।)

भीमा धुनी पयस्वनी, गोदावरी गहीर।
ऊँनत भंद्रा पूरणा, किसना निरमल् नीर ॥ ३३ ॥
सिंध ताम्रपरणी प्रमुख, नदियाँ ते नरनाह।
हैवर ढोया भीम हर, गिराँ उतंगाँ गाह ॥ ३४ ॥
देख वेद विद्या दिखण, पूज दुजाँरा पाव।
दीधा दान अनेक विध, सविनय तैं सिधराव ॥ ३५ ॥
देव हरी हर दिखण में, पूजै परम प्रवीत।
कीधो आछो करनरा, जनम सफल् जगजीत ॥ ३६ ॥
अनमी कंध नमाविया, नाणाँ भरै नरेस।
जीतो तूँ जैसिंघदे, दिखण तणाँ सौ देस ॥ ३७ ॥

---

(३३) भीमा = नदी का नाम। धुनी = नदी। पयस्वनी = पानी-वाली (नदी)। गहीर = गहरी। ऊँनत भद्रा = तुंगभद्रा नदी दक्षिण में। किसना = कृष्णा दक्षिण की नदी।

(३४) सिंध = सिंध नदी वा समुद्र। ताम्रपरणी = दक्षिण की नदी। हैवर = घोड़ा। ढोया = चलाया वा ले गया। उतंगां = ऊँचे। गाह = खूँदकर, चढ़कर। इन नदियों के नामों से वे देश संकेत से जानने चाहिएँ जो इन नदियों के पास वा बीच में हैं; यथा गोदावरी कृष्णा के बीच में आंध्र देश।

(३५-३६) इन दोहों में विद्वानों को दान व सम्मान करने का वर्णन है। करनरा = कर्णराज के पुत्र (जयसिंह) के।

(३७) अनमी = बिना नए हुए, बिना झुके हुए। नमाविया = झुके, नमे। नाणां = रुपये। भरै = दिए। दिखण तणां = दक्षिण के।

खेह नाँख हैवर खुराँ, अनराजाँ उतबंग।
अलहणपुर आयो अडर, श्री सिधराव अभंग ॥ ३८ ॥
सोमेस्वर अवतार सुण, सोलंकी सिधराव।
कही छतीसी बंक कवि, जिणरै अरथ जड़ाव ॥ ३९ ॥

इति सिधराव-छतीसी सम्पूर्ण।

---

(३८) खेह = धूलि। नाँख = डालकर। खुराँ = घोड़े के सुम अन = अन्य। उतबंग = सिर पर। अभंग = सही सलामत, विजयी होकर।

(३९) सोमेश्वर = महादेव, शिव।

इति सिधराव छतीसी टीका सम्पूर्ण।

(७) अथ वचन विवेक पच्चीसी

ऊतरती बाताँ करै, औराँरी अणबंध ।
निज मुख पाँणी ऊतरै, ईखै नँह मद अंध ॥ १ ॥
बैरीरी ही बत्तडी, करै नहीं कुल़वंत ।
बात बुरी मिल़ मिंत्ररी, कुल़ बाहिरा करंत ॥ २ ॥
काचड़गाराँ ऊपरा, राम तणी है रीस ।
काचड़गारा कूड़चा, बगड़ै बिसवाबीस ॥ ३ ॥
जग में नर हल़का जिकै, बोलै हल़का बोल ।
आप तणै मुख आपरो, मूरख करदे मोल ॥ ४ ॥
पर निंदा आठूँ पहर, चाटै बिषरी चाठ ।
क्यों नँह तू प्राणी करै, पंच रतनरो पाठ ॥ ५ ॥

---

(१) ऊतरती = खोटी । औरांरी = दूसरों की । अणबंध = बेशुमार । पांणी ऊतरै = लजाना, शर्मिंदा होना । इखै = देखना । इसै—पाठा०—इकै ।

(२) बत्तडो = बात । मिंत्ररी = मित्र की । कुल़बाहिरा = नीच कुल़वाले ।

(३) काचड़ = बुराई । गारां = वाला । काचड़गारा = बुराई करनेवाला । रीस = क्रोध । कूड़चा = बुराई से । बगड़ै = बिगड़ते हैं । बिसवाबीस = निश्चय ही ।

(४) हल़का = नीच । आपरो = अपना । मोल = मूल्य, क़ीमत ।

(५) आठूँ पहर = अष्ट पहर, रात-दिन । बिषरी = विष की, जहर की । चाठ = खाद्य वस्तु ।

पैंड पैंड ज्याँरा पिसण, त्याँराँ कड़वा बैंण।
जग जाँनूँ देखै जळै, नहिँ थाटाँ है नैंण॥ ६ ॥
जोय बंक जळजात ज्योँ, संजुत संत असंत।
बड़वानळ कड़वा वचन, जळ भलपण जाणंत॥ ७ ॥
चँदण लपटै मिणधरण, रीझै साँभळ राग।
पिण मुख माँझळ जहर तै, निंदवियो जग नाग॥ ८ ॥
बाँका बिष फळ नीपजै, ज्योँ बिष तररी डाळ।
यूँ दुरजणरी जीभड़ी, रैकारो कै गाळ॥ ६ ॥
जीकारो अमृत ज्युँ ही, भावै जगनूँ भाळ।
है रैकारो आक पय, गरळ बराबर गाळ॥ १० ॥

---

(६) पैंड पैंड = पग पग पर। पिसण = दुष्ट, शत्रु। त्याँरा = उनके। जाँनूँ = तिनको। थाटाँ = प्रसन्न।

(७) जळजात = कमल; जल और उसमें उत्पन्न वस्तु।

(८) मिण = मणि। मिणधरण = सर्प। रीझै = प्रसन्न होता है। साँभळ = सुनकर। राग = गायन। पिण = तो भी। माँझळ = में, अंदर। निंदवियो = निंदा की।

(६) नीपजै = पैदा होते हैं। तररी = वृक्ष की। डाळ = टहनी। यूँ = इस तरह। जीभड़ी = जिह्वा में। रैकारो = ओछे वचन, नीच वचन। कै = अथवा। गाळ = गाली गलौज।

(१०) जीकारो = 'जी' शब्द लगाकर बोलना; जैसे—रामजी, रतनूँजी आदि। भावै = अच्छा लगता है। जगनूँ = संसार को। भाळ = देखो। आक = आकडा (वृक्ष-विशेष)। पय = दूध। गरल = जहर।

टीकारो मालक तिको, जीकारो मुख जास।
उणसूँ ऐंकारो किसूँ, मुख रैकारो हास॥ ११॥
सज्जन बाँधै पाल़ सिर, सीसा छकियाँ गाल़।
दुरजण फोड़ै गाल़ दै, प्रीत सरोवर पाल़॥ १२॥
गाल़ न ऊठै गूमड़ो, ऊठै झाल़ अकत्थ।
जिणनूँ सज्जन बैण जल, सांत करण समरत्थ॥ १३॥

सोरठा

बिष मुख जास बसंत, मीठा बोलाँ हँस मरै।
उरग तणो कर अंत, मोर प्रकासै एह मत॥ १४॥

---

(११) टीकारो = टीकाई, प्रधान, सर्वोच्च। मालक = मालिक, पति। तिको = उसको, वह। जास = जिसके। उणसूँ = उससे। ऐंकारो = ऐंकार, मनोमालिन्य। रैकारो = ओछे वचन; जैसे—रतन्या, भगवान्या आदि। हास = हँसी में।

(१२) पाल़ = बंध। छकियाँ = खूब, यथेच्छ। गाल़ = गलाकर, तपाकर भरना।

(१३) ऊठै = उत्पन्न होना। गूमड़ो = फोड़ा। झाल़ = क्रोधाग्नि, जलन। अकत्थ = अकथनीय, बहुत भारी। जिणनूँ = जिसके लिये। बैण = वचन। सांत = शांत।

(१४) जास = जिसके। बोलाँ = वचनों से। हँस मरै = हँसकर मर जाते हैं वा लज्जित हो जाते हैं। उरग = सर्प। तणो = का। एह = यह। मत = बात, उदाहरण।

राम नाम चंगो रतन, सो मुनिराजाँ माल़।
पिल बाँधो बाधै गलै, गलै म बाँधो गाल़॥ २०॥
राखो आगै रसणरै, राघव नाम रसाल़।
मुख माँझल़ आँणो मती, गिणँ अबक ज्यूँ गाल़॥ २१॥
जीकारो बतल़ाव जग, जस जग हूँत न जाय।
जीहा साबल़ चाल तू, काबल़ बाल़ कहाय॥ २२॥
पड़ै खरच नाँणा प्रगट, जीमण मीठै जोय।
बाँका मीठै बोलणैं, नाँणा खरच न होय॥ २३॥
पंखी बोलै मोर की, मीठा जग मोहंत।
जन मीठा बोला जिके, क्यूँ जग बस न करंत॥ २४॥
पारख कीधी पंडिताँ, सरब मिले संताँह।
ज्याँरै जीभ भलाइयाँ, त्याँरै भाग भलाँह॥ २५॥

---

(२०) पिल = जबरदस्ती। बाधै = सम्पूर्ण, तमाम। म = मत, नहीं।

(२१) मांझल़ = मध्य, बीच में। आणो = लावो। मती = मत, नहीं। अबक = अकत्थ्य।

(२२) बतल़ाव = बोलो। जीहां = जीभ से। साबल़ = ठीक ठीक। काबल = बुरे बचन, गाली आदि। बाल़ = जलाओ। कहाय = कहने को।

(२३) नांणा = रुपये। जीमण = ज्योनार, दावत।

(२४) मीठा बोला = मीठे बोलनेवाले। जिके = जो।

(२५) पारख = परीक्षा। ज्यांरै = जिनके। त्यांरै = उनके। भाग = भाग्य, तकदीर।

जठै तठै इण जगत में, जीकारो श्रीकार।
बालो जसरा बायकाँ, तूकारो तनसार॥ २६॥
राणी जाया राजव्याँ, सहजाँहूँ बलिहार।
तूकारो तारीफियाँ, बरसे सोना धार॥ २७॥
कुवचन मुख कहणो नहीं, सुवचन कहणो सुद्ध।
बचन विवेक पचीसिका, इम आखै अविरुद्ध॥ २८॥

इति वचन विवेक पचीसी संपूर्ण।

---

(२६) जठै = जहाँ। तठै = वहाँ। श्रीकार = श्रेष्ठ। बालो = प्यारा। बायकाँ = वचनों में। तनसार = तन को छेदनेवाला, "तूकारो" शब्द का विशेषण है। तनसार—पाठां०—ततसार।

(२७) जाया = पैदा किया। राजव्याँ = राजपुरुषों को। सहजाँहूँ = स्वभाव को।

(२८) इम = इस प्रकार। आखै = कहते हैं।

इति वचनविवेक-पचीसी टीका संपूर्ण।

(८) अथ कृपण-पच्चीसी

माहव सूम मिलाव मत, अैड़ा घराँ हिसाब।
के हल्लर फल्लर करै, पावै कल्लर राब ॥ १ ॥
अदताराँ घर ऊख रस, नँह कारण मिसठाँण।
मन कारण मिस ठाँणरो, जठै भूख रस जाण ॥ २ ॥
ऊख गिरी धर ऊपरै, यल़ खाँडाँमय आब।
तूम्बाँ मीठम होय तो, सूबाँ होय सबाब ॥ ३ ॥

---

(१) माहव = माधव, हे कृष्ण। अैड़ा = ऐसे। के = कई प्रकार से। हल्लर फल्लर करै = टालमटोल करते हैं। कल्लर = खट्टी और पतली। राब = राबड़ी; एक प्रकार का पेय पदार्थ जो बाजरा, गेहूँ आदि से बनाया जाता है। पाठा० (M*) माहव सूम मिलाव मत, आडा घरां असाव। (S†) माहव सूम मिलाव मत, आयें घर असवाह। पावै ..... राब—पाठा०—पावे मल्लर राह।

(२) अदतारां = सूमों के। ऊख = ईख, सांठा। जठै = जहाँ। भूख रस जाण = भूख भी रस के समान है। अदतारां—पाठां०—(S) अदतारो। मन—पाठां०— (S) इण। रस = पाठां०—(S) मां।

(३) यल़ = इला, पृथ्वी। खांडांमय = शर्करामय। आब = पानी। सबाब = पुण्य। ऊख......ऊपरै—पाठां०—(M) उरग गरी धर ऊपरा, (S) उर धररी धर ऊपरां। यल़...आब—पाठां०—(M)

---

*(M) ऐसा चिह्न है वहाँ बा० मुरारिदानजी की पुस्तक का पा० है।
†(S) यह चिह्न जहाँ है वहाँ सीतारामजी की पुस्तक का पाठ है।

अदता टाणाँ ऊपरै, नाणाँ खरचै नाँहि ।
हाथ घसै निरधन हुवाँ, माँखी ज्यों जग माँहि ॥ ४ ॥
सावण मास सुहावणो, लागै झड जल लूँम ।
उण दिन ही आसव तणी, सोरभ नँह ले सूँम ॥ ५ ॥
हुवै मुवाँ बिन मुकत नँह, भै बिन हुवै प्रीति ।
सुधा पियाँ बिन अमरपद, ह्वै न दियाँ बिन क्रीत ॥ ६ ॥
भूपत भणकाराह, जसरा जिके न जाँ लिया ।
ताँ ताँ तणकाराह, गाणाँ क्योँ गरबीजिया ॥ ७ ॥

तल खांडों महिताब, (S) तळ खाडा मही ताब । तूम्बां...तो—पाठां०— (M) तूंबा मीठ महोल तो, (S) सूबां मीठम होय तो ।

(४) टाणां = विवाहादि उत्सव । नाणां = रुपया पैसा । घसै = घिसते हैं, मलते हैं । हाथ...हुवां—पाठां०—(S) हाथ पसारे धन लुवो ।

(५) लागै झड जल लूँम = खूब वर्षा होती है । आसव = बढ़िया शराब । सोरभ = सुगंधि । लागै...लूँम—पाठां०—(S) लागै कडजा लूँम । सोरभ...सूँम—पाठां०—(S) सुरभ न लाए सूँब ।

(६) मुवां बिन = मरे बिना । मुकत = मुक्ति । भै = भय, डर । क्रीत = कीर्ति । मुवां—पाठां०—(S) गुणां । ह्वै न—पाठां०—(S) केण ।

(७) भणकाराह = भणकारे, कान में शब्द पड़ना । जसरा = यश के । जिके = जो । जां = जिन्होंने । तांतां तणकाराह = तांत के वाद्ययन्त्र, सारंगी आदि । गाणां = गायन । गरबीजिया = गर्व करते हैं ।

भावार्थ—जिन राजाओं ने यश के शब्द नहीं सुने, उनका सारंगी आदि वाद्ययन्त्रों से गर्व करना वृथा है क्योंकि उनका यश कोई भी नहीं

ऊतर मीठा आखराँ, नीपण खारै साव।
सीलोहीं बन जालवै, उत्तर हंदो बाव॥ ८ ॥
कल में बुधवंता करै, साँपड विमल शरीर।
पाँण न मूढ़ पखालही, नदी बहंतै नीर॥ ९ ॥
जोईजै निज घर दियो, पर घर दियो निकाज।
आपस में हम ऊचरै, सब कूँ जस सज साज॥ १० ॥
उत्तर नूँ खाली कहै, उर ज्याँ बड़ो अँधेर।
उत्तर दिसा सुमेर है, उत्तर माँहि कुबेर॥ ११ ॥
जस थहरैं तो जीभ में, कृपा हूँत बिधि कीध।
मँहरे तो मृगसींग में, पैठो बान पसीध॥ १२ ॥

करता है। जसरा...लिया। पाठां०—(M) जसरा जिके न जालियां। (S) जसरा जिके न जांणिया। गार्णा......गरबीजिया–पाठां०—(M) गीणउ कू गजीया, (S) गीणत कूँ गरबीजिया।

(८) आखराँ = अक्षरों से। नीपण = निपुण, चतुर। खारै = खारा। साव = स्वाद, जायका। सीलोही = शीतल ही। हंदो = का। बाव = वायु। नीपण = पाठां०—(S) नेपिण।

(९) कल = संसार। सांपड = स्नान करके। पाण = पाणि, हाथ। पखालही = धोते हैं। कल = पाठां०—(M) कुळ।

(१०) जोईजै = जलाना चाहिए, देखना चाहिए। निकाज = व्यर्थ। जोईजै—पाठां०—(S) जो दूजे। हम—पाठां०—(S) इम। सब...साज—पाठां०—(S) सूँमां कुजस समाज।

(११) ज्यां = जिनके। उत्तर...कहै—पाठां०—(M) उत्तर नँह लखि यों कहै, (S) उत्तर उखोली कहै। ज्यां—पाठां०—(S) ज्यों।

(१२) थहरैं—ठहरता है। तो = तेरे। मँहरे = मेरे। मृग-

अंगण मंगण आवियाँ, उत्तर बेगो अप्प ।
एह महा ध्रम आतमा, ऐ तीरथ ऐ तप्प ॥ १३ ॥
दरब किसी ओपम दियाँ, तो सूँ है सह कोय ।
तो सारीखो तुहिज तू, अवर न दूजो कोय ॥ १४ ॥
सोना हंदी लंक सुण, जग तरसै सह जीव ।
जगत पंथ कोय न गिणै, गत थारी हयग्रीव ॥ १५ ॥
करूँ अरज कमलालया, त्यागाँ बार न तुज्ज ।
जिण दिन ओ जग छाँडस्याँ, उण दिन तोसूँ कज्ज ॥ १६ ॥

सींग में—प्राचीन काल में शिकार करने में धनुष की कोटि में मृगों के सींगों को उलझाकर उनको जीता पकड़ लेते थे। कृपण को यश मिलना ऐसा ही कठिन है।

(१३) अंगण = आंगन, घर में। मंगण = भिखारी। बेगो = जल्दी। अप्प = दे।

(१४) दरब = द्रव्य। ओपम = उपमा। सारीखो = समान, बराबर। अवर = अन्य, और। दरब—पाठां०—(S) देख। है—पाठां०—(S) कै।

(१५) जगत पंथ = संसार का मार्ग, जन्म मृत्यु। गत = गति। थारी = तुम्हारी। हयग्रीव = हे ईश्वर। जगत.....गिणै—पाठां०—(S) जग पत कोय जाके नहीं।

(१६) कमलालया = लक्ष्मी। बार = अभी। ओ = यह। छाँडस्याँ = छोड़ेंगे। उण = उस। करूँ—पाठां०—(S) कंस। त्यागाँ... तुज्ज—पाठां०—(M) भाँगाँ भार मनज्ज, (S) भाछाँ मार मचज्ज। छाँडस्याँ—पाठां०—(M) छेड़सी, (S) चंडसी।

गरक घणौ जल गूदड़ा, ले तन सूँ लपटाय।
अत्थ वत्थ भर काडवै, मंदिर जलताँ माय ॥ १७ ॥
मूल बरण उणईसमो, इक्क बीस मय आन।
साधहु विध तुम जतन सो, बिस्नुक भो भगवान ॥ १८ ॥
रहो बीवरे रामरस, अनरथ घणो अलंत ॥
याहिज है ध्रम आतमा, ऐ तीरथ ऐ तंत ॥ १९ ॥
कवियण रसण कृपाणरो, साजौ हुवै न घाव।
बीह न इसी बलायरो, सूँ माँ कठण सुभाव ॥ २० ॥

---

(१७) गरक = गर्क, डूबा हुआ। घणौ = बहुत। गूदड़ा = वस्त्र। अत्थ = धन। वत्थ भर = बाथ भरके, दोनों हाथों से पकड़कर। काडवै = निकालते हैं। गरक...गूदड़ा—पाठां०—(S) गरकू घणो ज गूदडा। अत्थ...काडवै—पाठां०—(M) असप बसप भरकै दियो, (S) अस्य..... स्य भरक दीयो।

(१८) मूल...उणईसमो = उन्नीसवां वर्ण 'ध' है। इक्क... आन = एक बीसवां वर्ण "न" सहित रखो, अर्थात् धन को। साधहु = साधना करो। विध = विधि सहित। भो = भव, महादेव। इक्क...आन—पाठां०—(S) इक नीर समवीय आन। साधहु...... भगवान। साधह विध तुम जठ मसु, विष्णु कयो नभ बान।

(१९) बीवरे = अवलंब करके। रामरस = भक्ति; नमक। (यहां श्लेष है।)

(२०) रसण = जिह्वा। कृपाणरो = तरवार का। साजौ = ठीक, दुरुस्त। बीह = भय। इसी = ऐसी। बलायरो = आफत का, आपत्ति का। कठण = कठिन। बलायरो—(पाठां०)—(S) बलाचरो।

पापी पाप न कीजिए, न्यारा रहिए आप ।
करणी आपो आपरी, कुण बेटो कुण बाप ॥ २१ ॥
रीझै विषधर राग सूँ, किया न जिणरै कान ।
कान किया क्यों कपणरै, सुणै न क्यों ही ज्ञान ॥ २२ ॥
जवन मृतक तन कपण धन, अनकण कीडी आँण ।
धरती में ऊँडो धरै, जाण भलो निज जाण ॥ २३ ॥
की ह्वै तूँबा बाँधियाँ, सूँमाँ हंके सत्थ ।
नर डूबै बहती नदी, सायर तरण समत्थ ॥ २४ ॥
दान घणो उत्तर दिये, हूं ते बित सत हार ।
मुँहडो ले उण मिनखरो, भोभर भीतर भार ॥ २५ ॥

---

(२१) न्यारा = अलग । करणी = कर्म । कुण = कौन । पापी—पाठां०—(S) पीपा ।

(२२) विषधर = सर्प । क्योंही = कुछ ही । रीझै...सूँ—पाठां०—(S) राकै विषधर राग सूँ । क्यों—पाठां०—(S) सूँ । ज्ञान—पाठां०—(S) दान ।

(२३) जवन = यवन, मुसलमान । अन = अन्न । ऊँडो = गहरा । कृपण—पाठां०—(S) रपण । ऊँडो—पाठां०—(S) ऊँचो ।

(२४) सूँमां = कंजूसों के । हंके = चलना । सत्थ = साथ । समत्थ = बलवान् । ह्वै—पाठां०—(M) कह, (S) कह । हंके—पाठां०—(M) हुवै । सत्थ—पाठां०—(M) समत्थ । डूबै—पाठां०—(M) होवै ।

(२५) बित = वित्त, धन । मुँहडो = मुख । मिनखरो = मनुष्य का । भोभर = भोभल, चूल्हे की गरम मिट्टी । भार = भाड़ । ते—

लुल़ डाल़ी तर लोभरै, झूलै रहिया झूल ।
देणो दान कबूल नँह, क्रपणाँ मरण कबूल ॥ २६ ॥
साराँ अदताराँ मँही, आछो पडदा पोस ।
मुँह न दिखावै मंगणाँ, देणाँ उत्तर दोस ॥ २७ ॥
देणाँ उत्तर कविजणाँ, सुवरण अरथ सनेह ।
सुकवि सूँम सम दाखिए, नहीं तफावज रेह ॥ २८ ॥

पाठां०—(M) तो । बित—पाठां०—(M) बिन । मुहडो ले उण—पाठां०—(M) मुखडी लै उण । भोभर—पाठां० —(M) भोवर ।

भावार्थ—धन के होते हुए भी अपने सत्य को छोड़कर जो मनुष्य दान में खाली उत्तर ही देता है उस मनुष्य का मुख भाड़ की भोभल में देना चाहिए ।

(२६) लुल़ = नमी हुई, झुकी हुई । डाल़ी = टहनी । तर = तरु, वृक्ष । लुल़...लोभरे—पाठां०—(M) लल ढाल़ी कर लोभरे, (S) लला ठला कर लो भलै । झूलै...झूल—पाठां०—(S) कूलै रहिया कूल ।

(२७) सारां = सब । आछो = अच्छा ।

(२८) सुवरण = स्वर्ण, अच्छे वर्ण । अरथ = लिये । दाखिए = कहिए । तफावज = फर्क । रेह = रेखा । देणाँ...कविजणाँ—पाठां०—(S) उत्तर दिये कवियणों । सुकवि...दाखिये—पाठां०—(M) सुकवि सूँमां दाखिया, (S) सुकवि सूँब मम दाखिया ।

भावार्थ—श्रेष्ठ कवि और सूँम में रेखा मात्र भी फर्क नहीं है; क्योंकि सुकवि तो श्रेष्ठ वर्णों की प्रीति के कारण कवियों को प्रश्न का उत्तर देता है और कंजूस धन की प्रीति के कारण खाली उत्तर देता है ।

सूधै मन बाँको सदा, अरज करै अविरुद्ध ।
वाँरै लइबा जावणों, देह दई मा बुद्ध ॥ २९ ॥

इति कृपण-पच्चीसी समाप्त ।

---

(२९) बांको = कविराजा बाँकीदासजी । वांरै = उनके, कंजूसों के । लइबा = लेने के लिये । दई = हे ईश्वर । मन—पाठां०—(M) मत । वाँरै...जावणों—पाठां०—(M) बार लई भाजाँवणो, (S) बार लई माँ जावणो । मा—पाठां०—(M) मो ।

इति कृपण-पचीसी टीका सम्पूर्ण ।

(६) अथ हमरोट-छत्तीसी

दोहा

सहर बसायो सूँमरै, ऊमर कोट कराय।
कहजे ऊमर कोट तै, सोढाँ लीधो आय॥ १ ॥
ऊमर हंदो दूसरो, हूँतो नाम हमीर।
तै हमरोट कहावही, सुषकर नीर समीर॥ २ ॥
सेरसाह दिल्ली तषत, बैठो बल निज बाह।
उमराँणै जद आवियो, सरण हमाऊ साह॥ ३ ॥
जठै अकब्बर जनमियो, जाँणै दुहुँ वै राह।
हुवो हिंद अकलीम मैं, साहिब साहाँसाह॥ ४ ॥

---

(१) बसायो = आबाद किया। सूँमरै = एक जाति का नाम है जो मुसलमान हो गई। कोट = किला, शहरपनाह॥ कहजे – कहा जाता है। तै = तिससे। सोढाँ = पँवार क्षत्रियों की एक शाखा। लीधो = ले लिया। आय = आकर।

(२) हंदो = का। हूँतो = था। तै = तिससे। हमरोट = हमीरकोट का अपभ्रंश। सुषकर = आराम देनेवाले। नीर समीर = जल-वायु।

(३) बल निज बाह = अपनी भुजाओं के बल से। उमराँणै = ऊमरकोट। सरण = शरणागत। हमाऊ = हुमायूँ।

(४) जठै = जहाँ, ऊमरकोट में। जनमियो = पैदा हुआ। दुहुँ वै राह = हिंदू मुसलमान। अकलीम = बादशाहत। साहिब = मालिक। साहाँसाह = बादशाहों के बादशाह।

सोढाँ ऊमरकोटराँ, सिर कटियाँ समसेर।
बाहे हणिया बैरहर, बाँका भारथ बेर॥ ५॥
एक एक सूँ आगला, राँणाँ ऊमरकोट।
प्रगट हुवा परमार वै, माँणीगर मनमोट॥ ६॥
जस दस दिस ओपीजिकाँ, लोपी नहँ कुल-लाज।
दिया हजाराँ हेक दिन, धाट तणाँ धजराज॥ ७॥
राँणाँ ऊमरकोटरा, गया जमारो जीत।
ज्याँरा मंगल धवल में, गवरीजै जसगीत॥ ८॥
लोक जठै रंको नहीं, नँह संको पर थाट।
सोढाँ जस डंको घुरै, पाधर बंको धाट॥ ९॥

---

(५) ऊमरकोटराँ = ऊमरकोट के। सिर = मस्तक। कटियाँ = कटे हुए। समसेर = तलवार। बाहे = चलाकर। हणिया = मारे। बैरहर = शत्रुता रखनेवालों को। बाँका = टेढ़े या कवि बाँकीदास कहता है। भारथ = युद्ध। वेर = समय।

(६) आगला = अग्रगण्य। प्रगट = प्रकट। हुवा = हुए। परमार = पँवार-प्रमार क्षत्रियों में एक शाखा है, सोढे उनकी उपशाखा है। वै = वे। माँणीगर = वैभव को भोगनेवाले दानी। मनमोट = बड़े मन वाले।

(७) जस = सुयश। दस दिस = दसों दिशाएँ। ओपी = शोभायमान हुई। तणाँ = के। धजराज = घोड़े।

(८) ज्याँरा = जिनके। मंगल = मांगलिक गान। धवल में = महलों में। गवरीजै = गाए जाते हैं। जसगीत = सुयश के गीत।

(९) रंको = कोई भी दरिद्र नहीं है। संको = सकुचाना, कुढ़ना।

घर घर मैं धीणाँ घणाँ, घर घर घूमै माट।
राग रंग रलियावणो, धरपुड़ माँझल धाट ॥ १० ॥
की ईराँ ऐराक की, किसूँ केच मकराँण।
पेत तुरंगाँ धाट जिम, बाँका धाट बखाँण ॥ ११ ॥
हंस जँहीं हालंदियाँ, धाटेचियाँ तियाँह।
कनक लता कठियाँणियाँ, जोड़ै नँहीं जियाँह ॥ १२ ॥
धन उमराँणो धाटधर, पदमणियाँ बिण पार।
सह नारी सीकोतरी, धरती सिंध धिकार ॥ १३ ॥

पर थाट=दूसरे की संपत्ति को देखकर। डंको घुरै=नकारे बजते हैं। पाधर बंको धाट=धाट का जिला जमीन पर बड़ा जबरा है।

(१०) धीणां=गाय, भैंस, बकरी, भेड़। घूमै माट=मही बिलोया जाता है। रलियावणो=सुहावना। धरपुड़=पृथ्वी के खंड। मांझल=में। धाट=ऊमरकोट का जिला।

(११) की=क्या। ईरां=ईरान। किसूँ=क्या। पेत तुरंगां=घोड़ों के पैदा होने की जगह। धाट जिम=ऊमरकोट का जिला जैसा। बांका=कवि बांकीदासजी कहते हैं। धाट=ऊमरकोट का जिला ही है।

(१२) जँहीं=जैसी। हालंदियां=चलनेवाली। धाटेचियां=धाट की। तियांह=स्त्रियें। कनक=सुवर्ण। लता=बेल। कठियांणियां=काठियावाड़ की। जोड़ै=बराबर। जियांह=जिनके।

(१३) धन=धन्य। उमराणो=ऊमरकोट। धाटधर=धाट जिले की पृथ्वी। पदमणियां=पद्मिनी स्त्रियां। बिण पार=अपार।

पूरो सुष हमरोट पुर, लोक न जाँणै डंड।
छोलाँ जल लांबो छिलै, बड़लागा ब्रहमंड ॥ १४ ॥
ज्याँ दीहाँ सिवराज सुत, राँणो रांयाँमाल।
ज्याँ दीहाँ जोवण जिसो, उमराँणो जगढाल ॥ १५ ॥
राव कलारी बार मैं, ईडर नगर अनूप।
बारै राँयाँमालरै, उमराँणो इण रूप ॥ १६ ॥
घाट सुरंगो गोरियाँ, आदू कहवत एह।
पदमणियाँ हमरोट है, राष म संसो रेह ॥ १७ ॥
लागाँ कुसुम सरीस बप, ज्याँरै पड़ै षरांट।
हद नाजक हिरणाष्षियाँ, है माँझल हमरोट ॥ १८ ॥

---

(१४) हमरोट = हमीरकोट, ऊमरकोट। लांबो = ऊमरकोट के तालाब का नाम है। बड़ = वट या बरगद का वृक्ष।

(१५) ज्यां दीहां = जिन दिनों में। रांयांमाल = रायमल। जोवण जिसो = देखने जैसा। उमरांणो = ऊमरकोट। जगढाल = जगत् की रक्षा करनेवाला।

(१६) राव कलारी = रावजी कलाजी के। बार में = समय में। बारै रांयांमालरै = रायमल के समय में।

(१७) सुरंगो = सुशोभित। गोरियां = स्त्रियों से। आदू = प्राचीनी। कहवत = कहावत। पदमणियां हमरोट है = ऊमरकोट में पद्मिनियां होती हैं। राख म संसो रेह = इसमें रेखामात्र भी संशय-भ्रम मत रख।

(१८) लागां = लगने से। कुसुम सरीस = सिरस का पुष्प। बप = सरीर। ज्यांरै = जिनके। पड़ै षरांट = लोही निकलकर खरूँट जम जाता है। हद नाजक = नाजुकता में पूर्ण। हिरणाष्षियां = मृगनयनियां। मांझल = में। हमरोट = ऊमरकोट।

एकै दिट्ठाँ दिट्ठ सह, महलाँ चंपक माल।
कर सूँ लीधी तोड़ किण, रूप रूँष इक डाल ॥ १६ ॥
एकै पदमण वासतै, सींघल गयो रतन्न।
ऊमरकोट न आवियो, मतो कियो की मन्न ॥ २० ॥
लोयण चंचल श्रवण लग, लाँबा बेणी डंड।
महकै सहज सुबास बप, किर लायो श्रीषंड ॥ २१ ॥
आँषड़ियाँ अणियालियाँ, काजल रेष कियाँह।
बीभलियाँ भावंदियाँ, लाज सनेह लियाँह ॥ २२ ॥
झषाँ षंजरीटाँ मृगाँ, संबर हतक सराँह।
जैतवार ज्याँरा नयण सरोरुहाँ सुथराँह ॥ २३ ॥

---

(१६) एकै = एक। दिट्ठाँ = देखने से। दिट्ठ = देखी। सह = सब। महलां = स्त्रियां। कर सूँ = हाथ से। लीधी = लिया। किण = किसने। रूप रूँष = रूप के वृत्त की। इक डाल = एक डाली।

(२०) एकै = एक। पदमण वास्तै = पद्मिनी के लिये। सींघल = लंका, सिंघल द्वीप में। गयो = गया। रतन्न = चितौड़ का महाराणा रतनसिंह। मतो = विचार। की = क्या। मन्न = अपने मन में।

(२१) लोयण = नेत्र। श्रवण लग = कानों तक। लांबा = लंबे। बेणी डंड = आटी-चोटी। सहज = स्वाभाविक। सुबास = सुगन्धि। बप = शरीर। किर = मानों। लायो = लगाया। श्रीषंड = चंदन।

(२२) आंषड़ियां = आँखें, नेत्र। अणियालियां = तीखी-चुभनेवाली। बीभलियां = विह्वलों, रसिकों को। भावंदियां = अच्छी लगनेवाली। लाज = लज्जा। सनेह = स्नेह, प्रीति।

(२३) झषां = मछलियां। षंजरीटां = खंज पत्ती, कोडिया, एक जाति की चिड़िया। मृगां = हरिणों को। संबर हतक सरांह =

महलाँ पूनम चंद मुष, आठम चंद ललाट।
केहर कड़ ज्यूँ षीण कड़, भ्रू भ्रमरावल घाट ॥ २४ ॥
कोमल राता पातला, अधर जिकाँरा ईष।
अभिलाषै पीवण अमर, सुधा जाम दे सीष ॥ २५ ॥
दाँत दमंकै अहर दुत, जाँण चमंकै बीज।
ज्याँरी धुनि मधुरी सुणे, रहै तपोधन रीज ॥ २६ ॥
स्वच्छ कपोल महेलियाँ, मझ छबि नकूँ मिणाँह।
पात समर सोनी किया, जर जाफरी तणाँह ॥ २७ ॥

कामदेव के बाणों से घायल हुए हुओं को। जैतवार = जीतनेवाले। ज्यांरा = जिनके। नयण = नेत्र। सरोरुहां = कमलों को। सुथरांह = अच्छे।

(२४) महला = स्त्रियां। पूनमचंद = पूर्णिमा का चंद्रमा। मुष = मुँह। आठम = अष्टमी। चंद = चंद्रमा। केहर = सिंह, शेर। कड़ = कटि, कमर। षीण = क्षीण, पतली। भ्रू = भँवारे। भ्रमरावल = भँवरों की पंक्ति की। घाट = तरह।

(२५) राता = लाल, रक्त। पातला = पतले। अधर = होंट। जिकांरा = जिनके। ईष = देखकर। अभिलाषै = इच्छा करे। पीवण = पीने के लिये। अमर = देवता। सुधा = अमृत। जाम = प्याला। दे सीष = अलग हटाकर।

(२६) अहर = दिन। दुत = कांति। ज्यांरी = जिनकी। तपोधन = महात्मा। रीझ = प्रसन्न।

(२७) कपोल = गाल। महेलियां = स्त्रियों के। मझ छबि = छवि में। नकूँ मिणांह = कुछ भी कमी नहीं है। पात समर सोनी किया = मानों कामदेव-रूपी सुनार (स्वर्णकार) ने पत्ते बनाए हैं। जर जाफरी = स्वर्ण और केसर। तणांह = के।

अंग अंग मझ ऊफणै, जोबन आठों जाम।
त्याँ हंदी तसबीररो, कलम हुवै नँह काम॥ २८॥
सह आभरणाँ सोभही, आवल फूल तियाँह।
जाँणै फूलाँ भार जुत, हाटक बेलड़ियाँह॥ २६॥
चोरे पूनम चंद ये, काढी काँमणियाँह।
काय सुघर अरु काय धर*, देषो दाँमणियाँह॥ ३०॥
घूँघट षोलंदी नँहीं, बोलंदी पिक वैण।
गजगत जावै गोरियाँ, लाँबै सर जलैण॥ ३१॥

---

(२८) मझ=में। ऊफणै=उफलै। जोबन=यौवन। आठों जाम=आठ प्रहर, दिन रात। त्याँहंदी=तिनकी।

(२६) सह आभरणाँ=गहणों के सहित। आवल फूल=बहुत से, झुंड के झुंड। तियाँह=स्त्रियाँ। फूलाँ=पुष्पों के। भार जुत=बोझ संयुक्त। हाटक=सोने की, स्वर्ण की। बेलड़ियाँह=बेल, वेलि, लता।

(३०) चीरे पूनमचंद=पूर्णिमा के चंद्रमा को चीरकर। ये=इन। काढी=निकाली। कामणियाँ=स्त्रियों को। काय सुघर अरु काय धर, कै सीवल कै धाट धर=क्या घरों में और क्या उस पृथ्वी पर या तो सिंवल द्वीप लंका में या धाट के जिले में। देखो दामणियाँह=बिजली की सी चमक-दमकवाली स्त्रियाँ देखो।

* पाठांतर—"कै सीधल कै धाट धर।"

(३१) षोलंदी नहीं=अलग नहीं हटाती। बोलंदी=बोलती है। पिक बैण=कोकिल के से मधुर वचन। गज गत=हाथी की सी चाल से। लाँबै सर=लाँबा नामक तालाब पर। जलैण=पानी भरने को।

दै घररी तज देहली, पणघट साँमाँ पाय ।
बाजै घूघर पार बिण, सोर सरोवर जाय ॥ ३२ ॥
सरवर लाँबै संचरै, पणघट पदमणियाँह ।
किर गिरवाँण कँवारियाँ, बप सोभा बणियाँह ॥ ३३ ॥
ज्याँरा द्रग कच जीतिया, सोह पंकज सींवाल़ ।
पड़ही लहराँ मिस पगाँ, त्याँ हंदाँ ओताल ॥ ३४ ॥
कमल़ जिसा सुकुमार कर, चूड़ा रँगिया चोल़ ।
लाँबै जल़ लहराँ कल़स, भरै हिलोल़ हिलोल़ ॥ ३५ ॥
नवा सुरंगा ओढियाँ, चंगा भीणाँ चीर ।
भरही हेमबरन्नियाँ, दूधबरन्नाँ नीर ॥ ३६ ॥
नष सूँ लै चोटी लगै, तन छबि माँह तरंत ।
लुल़ मिल़ केहरलंकियाँ, लांबै नीर भरंत ॥ ३७ ॥

---

(३२) पणघट = पनघट, पानी भरने का स्थान । पाय = पग ।

(३३) संचरै = आती है । गिरवाँण कँवारियाँ = देवकुमारी । बप = सरीर ।

(३४) ज्याँरा = जिनके । द्रग = नेत्र । कच = केस । सोह = सोभा, सब । पंकज = कमल । सीवाल़ = सिवार, जल के भाग, काई इत्यादि । त्याँ हंदाँ = उनके । ओताल़ = जल्दी से ।

(३५) जिसा = जैसे । सुकुमार = कोमल । कर = हाथ ।

(३६) नवा = नवीन । चंगा = अच्छे । भीणाँ = महीन, बारीक पोत के । चीर = वस्त्र । भरही = भरती है । हेमबरन्नियाँ = स्वर्ण की सी कांतिवाली । दूधबरन्ना नीर = दूध जैसा पानी ।

(३७) लै = लेकर । चोटी लगै = चोटी तक । माँह = में ।

लांबै सर पाँणी भरै, गोरी गात अनूप।
ज्याँ आगै पाँणी भरै, रंभ अलोकिक रूप ॥ ३८ ॥
हेमकल्स कुच जुग हिए, नीर कल्स सिर लेइ ॥
पणघट हूँताँ बाहुड़ै, कल्स दुहूँ कर देइ ॥ ३९ ॥
मँहों छतीसाँ दूहड़ाँ, है बरणन हमरोट ॥
आ हमरोट-छतीसिका, मिनष सुणैं मनमोट ॥ ४० ॥

इति हमरोट-छत्तीसी समाप्त।

तरंत = तिरता है। लुल = झुककर। मिल = इकट्ठी होकर। केहर-लंकियाँ = सिंह जैसी कमरवाली।

(३८) गात = सरीर। अनूप = जिसको उपमा न लग सके। ज्याँ आगै = जिनके अगाड़ी। रंभ = रंभा, इंद्र की अप्सरा।

(३९) हेमकल्स = स्वर्ण के कुंभ। कुच जुग = दोनों स्तन। नीर कल्स = पानी का बरतन। पणघट हूँताँ = पानी भरकर लाने के स्थान से। बाहुड़ै = वापिस आती है। कल्स दुहूँ कर देइ = दोनों कलशों पर हाथ रखकर।

(४०) मँहीं = मैं। छतीसाँ = ३६। दूहड़ाँ = दोहों। बरणन = वर्णन। हमरोट = हमीरकोट, ऊमरकोट का। मिनष = मनुष्य। मनमोट = बड़े मनवाला, शौकीन, दातार।

इति हमरोट-छतीसी टीका समाप्त।

स्फुट संग्रह (टीका सहित)

(बांकीदासजी के गीत आदि फुटकर छंदों का संग्रह तथा टीका)

दोहा

माळी ग्रीषम माँह, पोष सुजल द्रुम पालियो ।
जिणरो जस किम जाय, अत घण बूठाँ ही अजा* ॥ १ ॥

शब्दार्थ—द्रुम = पेड़ । जिणरो = जिसका । किम = कैसे । घण = घन, मेह । बूठाँ = बरसने से । अजा = अर्जुनसिंह ।

नोट—एक दिन कविराजाजी महाराज मानसिंहजी के साथ हाथी पर चढ़े हुए जा रहे थे । उस समय रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी मिले—जिनके पास कविराजाजी अपनी सामान्य दशा में जाया करते थे—और उन्होंने पूछा कि आपको उन गाँवों का वृत्तांत भी स्मरण है वा नहीं ? उस समय बांकीदासजी ने उक्त दोहा पढ़कर कृतज्ञता प्रकट की ।

---

* यह सोरठा पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली के भामिनी-विलास के ३०वें श्लोक का आशय है—

"तोयैरल्पैरपि करुणया भीमभानौ निदाघे
मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टिः ॥
सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारां
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन" ॥ ३० ॥

१—गीत

प्रथम नेह भीनो महाक्रोध भीनो पछै,
लाभ चमरी समर झोक लागै।
रायकँवरी बरी जेण बागै रसिक,
बरी घड़ कँवारी तेण बागै॥ १॥
हुवे मंगल़ धमल़ दमंगल़ बीरहक,
रंग तूठो कमध जंग रूठो।
सघण बूठो कुसुम वोह जिण मोड़ सिर,
बिषम उण मोड़ सिर लोह बूठो॥ २॥
करण अखियात चढियो भलाँ काल़मी,
निवाहण बयण भुज बाँधिया नेत।
पँवाराँ सदन वरमाल़ सूँ पूजियो,
खल़ाँ किरमाल़ सूँ पूजियो खेत॥ ३॥
सूर बाहर चढ़े चारणाँ सुरहरी,
इतै जस जितै गिरनार आबू।
बिहँड खल़ खींचियाँ तणा दल़ विभाड़े,
पोढियो सेज रण भोम "पाबू"॥ ४॥ २॥

शब्दार्थ—भीनो = भीगा हुआ। चमरी = चँवरी, विवाह-मंडप। झोक = झोंका। बरी = वरण किया, ब्याही। जेण = जिस। बागै = विवाह के वस्त्र। घड़ = फौज। कंवारी = बिना लड़ी हुई, अनब्याही। धमल़ = धमाल राग। दमंगल़ = युद्ध की चिनगारियाँ। बीरहक = वीरों का हल्ला। तूठो = प्रसन्न हुआ। कमध = राठौड़। रूठो =

क्रुद्ध हुआ। सघण = बहुत। बूठो = बरसा। वोह = प्रवाह। मोड़ = सेहरा, मुकुट। अखियात = प्रसिद्धि। भलां = श्रेष्ठ। कालमी = घोड़ी का नाम। निवाहण = निर्वाह करने को। नेत = भाला, कांकण डोरड़े। पँवारां = परमार राजपूतों के। खलां = शत्रुओं ने। बाहर = सहायता। सुरहरी = गाएँ। बिहँड = नाश कर। खींचियां = खींची राजपूत। दल = सेना। बिभाड़े = बखेरना, तितर-बितर करना। पोढियो = सो गया। भोम = भूमि।

भावार्थ—प्रथम तो प्रेमरस में भीगा फिर क्रुद्ध हुआ और जिसे विवाह-मंडप में (भाँवरी के समय) युद्ध का झोंका लगा उस रसिक ने जिस विवाह-वस्त्र से (जामे से) राजकन्या का पाणिग्रहण किया था उसी वस्त्र से ताजा फौज से युद्ध किया ॥ १ ॥

जिस समय मंगल गीत हो रहे थे उस ही समय युद्ध की चिनगारी उठी और वीर पुरुषों ने युद्ध के लिये हल्ला किया। जिस समय वह राठौड़ वीर विवाह-रंग में प्रसन्न हो रहा था उसी समय उसे युद्ध के लिये क्रुद्ध होना पड़ा। जिसके मोड़ (सेहरे वा मुकुट) पर खूब फूलों की वर्षा हुई थी उसी मोड़ पर तलवारें चलीं ॥ २ ॥

जो परमारों के महलों में वरमाला से पूजा गया था वही शत्रुओं की तलवारों से पूजा गया। उस वीर ने अपनी प्रसिद्धि करने को और अपने वचनों का निर्वाह करने को हाथ में भाला लेकर श्रेष्ठ "कालमी" घोड़ी पर सवारी की ॥ ३ ॥

उस शूरवीर ने चारणों की गायों की सहायता के लिये चढ़ाई की। उसका यश तब तक रहेगा जब तक गिरनार और आबू रहेंगे। "पाबू"

वीर ने खींचियों की फौज को नाश करके भगा दिया और स्वयं रणभूमि में अपनी शय्या लगा ली ॥ ४ ॥

नोट—अनुमान से संवत् १३६० विक्रमी के आसपास राजपूताने में "पाबूजी" नामक राठोर क्षत्रिय बड़े वीर हुए हैं जो अत्यंत धार्मिक और सदाचारशील थे। इनके गुणों की प्रशंसा सम्पूर्ण राजपूताने में फैली हुई है और वे देवता करके माने और पूजे जाते हैं। "पाबूजी" मारवाड़ के "कोलूमढ़" नामक ग्राम के निवासी थे। उन्हीं का सम-कालीन "जिनराज" नामक खींची क्षत्रिय "जायल" ग्राम में राज्य करता था। उसी ग्राम में "देवलजी" नामक एक चारणी निवास करती थीं जो देवी की अवतार थीं। इन "देवलजी" के पास देवतांशसंभूत और विशेष गुणों से सम्पन्न एक "कालिमी" नामक घोड़ी थी। जिनराज खींची ने "देवलजी" से यह कालिमी घोड़ी मांगी परंतु उन्होंने देने से इनकार कर दिया। अतः वह दुष्ट "जिनराज" इनसे शत्रुता रखने लगा और उनके गो आदि धन हरण करके नाना प्रकार से कष्ट देने की चेष्टा करने लगा। इससे "देवलजी" अपनी संपूर्ण संपत्ति लेकर "पाबूजी" के निकटस्थ स्थान में आ गईं। "कालिमी" घोड़ी की प्रशंसा सुनकर "पाबूजी" ने उसे मांगा तब "देवलजी" ने कहा कि जो वीर मेरे गो आदि धन की रक्षा के निमित्त अपना मस्तक देने को तैयार हो उसी को यह घोड़ी दी जा सकती है। "पाबूजी" के इस बात को स्वीकार करने पर देवलजी ने उन्हें घोड़ी दे दी। जब "जिनराज" ने यह बात सुनी तो वह दोनों पर आग बबूला हो गया। और उसने कई दफा "देवलजी" की गाएँ हरण करने की चेष्टा की, किंतु "पाबूजी" के प्रताप से वह

कृतकार्य नहीं हो सका। इससे "पाबूजी" के गुणों की प्रशंसा बहुत दूर दूर तक फैल गई थी। उसे सुनकर "सिंध" देश के "उमरकोट" नगर के "सोढा" क्षत्रिय की कन्या ने उन्हें वरने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी के अनुसार कन्या के पिता ने "पाबूजी" के पास विवाह का संदेशा भेजा। इसके उत्तर में "पाबूजी" ने कहा कि मैं अपना मस्तक "देवलजी" को दे चुका हूँ, मेरे साथ विवाह करने से क्या लाभ होगा? जब कन्या ने यह बात सुनी तो उसने कहा कि केवल "पाबूजी" की पत्नी कहलाना चाहती हूँ और कुछ नहीं। अंत में विवाह स्थिर हो गया। "पाबूजी", उमरकोट विवाहार्थ प्रस्थान करने के पूर्व "देवलजी" से, आज्ञा लेने आए। उन्होंने आज्ञा देकर कहा कि यदि "जिनराज" पीछे से हमारी गाएँ घेरेगा तो उस समय तुम्हें यह "कालिमी" घोड़ी सूचना देगी। तब तुम अपने प्रतिज्ञानुसार शीघ्र चले आना; देर मत करना।

पाबूजी "जो आज्ञा" कहकर विदा हुए। उनके जाने के पश्चात् पापी "जिनराज" देवलजी की गाएँ घेरकर ले चला। "देवलजी" ने अपनी दैवी शक्ति से "पाबूजी" का स्मरण किया। उसी क्षण वह "कालिमी" घोड़ी हिनहिनाने और नाचने-कूदने लगी। इस समय उमरकोट में "पाबूजी" की भाँवरी (फेरे) हो रही थी। घोड़ी की आवाज सुनते ही उन्होंने कहा—"बस, मुझे संदेश आ गया है; मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता।" यह कहकर वे, भाँवरी का कार्य बिना पूर्ण किये ही, घोड़ी पर जा चढ़े और वहाँ आकर खींचियों से भिड़ गए। बड़ी वीरता से लड़कर "देवलजी" की गायों को छुड़ाकर ले आए

किंतु एक बछड़ा नहीं आया था और पीछे रह गया था। उसे फिर लेने को गए। वहीं वे बड़ी वीरता से लड़कर काम आ गए। सोढी राजकन्या ने भी, जिसका पाणिग्रहण मात्र हुआ था, सती होकर अपने धर्म का निर्वाह किया। धन्य है यह भारत-भूमि! जहाँ पर "पाबूजी" सरीखे निजधर्म निभानेवाले दृढ़प्रतिज्ञ क्षत्रिय और "सोढीजी" जैसी क्षत्राणियाँ जन्म लेती हैं। ऐसे ही वीर पुरुषों और स्त्रियों से इस पवित्र भारत-भूमि की अखिल संसार में उज्ज्वल कीर्त्ति-पताका फहरा रही है।

(स्व० ठा० भूरसिंहजी के "विविध संग्रह" से)

२—गीत

बस राखो जीभ कहै इम बाँको कड़वा बोल्याँ प्रभत किसी।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जिसी॥ १॥
भारी अगै उगैरा भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा।
मन मिलियोड़ा तिकाँ माढ़वाँ, जीभ करै खिण माँह जुवा॥ २॥
मैला मिनख बचनरै माथै, बात बणाय करै विस्तार।
बैठ सभा बिच मूँडा बारै, बचन काढ़णो बहुत बिचार॥ ३॥
मन में फेर धणीरी माला, पकड़ै नँह जमदूत पलो।
मिलै नहीं बकणा सूँ माया, भाया कम बोलणो भलो॥४॥३॥

शब्दार्थ—प्रभत = प्रशंसा, शाबाशी। अगै = पूर्वकाल में, अतीत में। उगैरा = वगैरह। भारत = युद्ध। हेकण = एक। मिलियोड़ा = मिले हुए। तिकाँ = उनके। माढ़वाँ = मनुष्यों के। खिण = क्षण। जुवा = जुदा, अलग। मैला = मलिन। मिनख = मनुष्य। (मैला-

मिनख = दुष्ट मनुष्य ।) माथै = ऊपर । मूँडा = मुख से । बारै = बाहर । धणीरी = स्वामी की, ईश्वर की । पलो = वस्त्र का छोर । भाया = हे भाई ।

भावार्थ—कविराजा बांकीदासजी कहते हैं कि अपनी जिह्वा को वशीभूत रखो । कड़वे वचन बोलने से कोई शाबाशी नहीं है क्योंकि लोहे की तरवार की चोट वैसी नहीं लगती है जैसी जिह्वा की तरवार की चोट लगती है ॥ १ ॥

एक जीभ ही के प्रताप से पहिले कई महाभारत आदि युद्ध हो चुके हैं और यह जीभ एक क्षण भर में जिन मनुष्यों के मन मिले हुए हैं उनको अलग अलग कर देती है ॥ २ ॥

दुष्ट मनुष्य जरा सी बात के ऊपर उसका विस्तार कर डालते हैं अतः सभा के अंदर बहुत विचार कर मुख से बाहर शब्द निकालना चाहिए ॥ ३ ॥

(हे मनुष्यो) मन में ईश्वर की माला फेरो जिससे यमराज के दूत कुछ पकड़ ही न सकें और हे भाई ! बकने से तो धन नहीं मिलता है इससे (बकने की अपेक्षा) तो कम बोलना ही अच्छा है ॥ ४ ॥

३—गीत*

आयो इँगरेज मुलकरै ऊपर, आहँस लीधा खैंचि उरा ।
धणियाँ मरे न दीधी धरती, धणियाँ ऊभाँ गई धरा ॥ १ ॥

---

* ये गीत कविया मुरारिदानजी अयाचक से प्राप्त हुए । उन्हीं ने टीका भी की । ह० ना० ।

फौजाँ देख न कीधी फौजाँ, दोयण किया न खल़ा डल़ा।
खवाँ खाँच चूड़ै खावँदरै, उणहिज चूड़ै गई यल़ा॥ २॥
छत्रपतियाँ लागी नँह छाणत, गढ़पतियाँ धर परी गुमी।
बल़ नँह कियो बापड़ा बोताँ, जोताँ जोताँ गई जमी॥ ३॥
दुय चत्रमास वादियो दिखणी, भोम गई सो लिखत भवेस।
पूगो नहीं चाकरी पकड़ी, दीधो नहीं मड़ैठो देस॥ ४॥
बजियो[1] भलो भरतपुरवाल़ो, गाजै गजर धजर[2] नभ गोम।
पहिलाँ सिर साहबरो पड़ियो, भड़ ऊभै नँह दीधी भोम॥ ५॥
"महि जाताँ[3] चींचाताँ महिल़ा, ऐ दुय मरण तणाँ अवसाण"।
राखो रे किहिंक रजपूती, मरद हिंदू की मुस्सलमाण॥ ६॥
पुरजोधाँण उदैपुर जैपुर, पहु थाँरा खूटा परियाँण।
आँकै गई आवसी आँकै, बाँकै आसल किया बखाँण॥७॥४॥

शब्दार्थ—मुलकरै = देश के। आहँस = पराक्रम, शक्ति। उरा = अपनी ओर। ऊभाँ = खड़े हुए, मौजूदगी में। दोयण = शत्रु। खल़ाडल़ा = नाश। खवाँखाँच चूड़ै = कंधे से कलाई तक के चूड़े सहित। खावँदरै = पति के। उणहिज = उस ही। खवाखाँच... गईयल़ा = पृथ्वी उसी अपने पुराने पूरे चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में चली गई। छाणत = अलखावणी, बुरी। छत्रपतियाँ......... छाणत = राजाओं को यह बात बुरी नहीं लगी। परी गुमी = चली

(१) पाठां०—अडियो। (२) पाठां०—इक। (३) पाठां०—चाथाताँ (दबी हुई))।

गई। बापड़ा = बेचारे। बोतां = डुबोना, खोना। जोतां जोतां = देखते देखते। चत्रमास = चतुर्मास। बादियो = लड़ा। दिखणी = दक्षिण-देश का राजा। मड़ैठो देश = महाराष्ट्र देश। बजियो = लड़ा। गाजै गजर धजर नभ गोम = तोपों के चलने की अदा से आकाश और पृथ्वी भर गई। चींचातां = चिल्लाते समय। महिला = स्त्री। अवसाण = समय। किहिँक = कोई। पहु = राजा। खूटा = समाप्त हुए। परियांण = वंश। आंकै = समय, भवितव्यता। आवसी = आवैगी। आसल = असल, आसिया कविराज बांकीदासजी का गोत्र था।

भावार्थ—जब अँगरेज इस देश के ऊपर चढ़कर आए तब उन्होंने सबके पराक्रम को अपनी ओर खींच लिया। पृथ्वी के स्वामियों ने अर्थात् राजाओं ने मरकर पृथ्वी नहीं दी किंतु उनके खड़े खड़े ही पृथ्वी (दूसरों के अधिकार में) चली गई॥ १॥

शत्रुओं की सेना को देखकर भी किसी ने सेना लेकर सामना नहीं किया और न शत्रुओं का नाश ही किया। यह पृथ्वी तो पूर्व-पति के संपूर्ण चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में चली गई॥ २॥

राजाओं को यह बात बुरी मालूम नहीं हुई। किले के स्वामियों की भी पृथ्वी चली गई। इन बेचारे लोगों ने तो पृथ्वी को डुबोते हुए (खोते हुए) जरा भी तो पराक्रम नहीं दिखाया। इनके देखते देखते इनकी पृथ्वी चली गई॥ ३॥

दो चतुर्मास (आठ मास) तक दक्षिण देश का राजा लड़ा, यदि उसकी पृथ्वी चली गई तो यह होनहार था। उसने तो दासता अंगीकार की ही नहीं और न महाराष्ट्र देश ही दिया॥ ४॥

भरतपुर का राजा भी अच्छा लड़ा। उसने तोपों की गर्जना से आकाश और पृथ्वी दोनों को भर दिया। प्रथम स्वामी का सिर कटकर गिर गया किंतु एक भी योद्धा के खड़े हुए पृथ्वी नहीं दी गई ॥ ५ ॥

संसार में पुरुष के लिये ये दो समय ही मृत्यु के हैं। एक तो जब उनकी जमीन जाती हो और दूसरे जब उनकी स्त्री अन्य के अधिकार में फँसकर असहाय अवस्था में चिल्लाती हो। कवि कहता है कि अरे कोई तो हिंदू मुसलमान राजपूती (क्षत्रिय) धर्म रखो ॥ ६ ॥

जोधपुर, उदयपुर और जयपुरवाले राजाओ ! तुम्हारा तो यह वंश ही समाप्त हो चला। यह पृथ्वी भवितव्यता से ही गई है और अब होनहार होगा तभी यह आवेगी (स्वतंत्र होगी)। यह बिलकुल ठीक ठीक बाँकीदास ने वर्णन किया है ॥ ७ ॥ ४ ॥

४—गीत*

सुरपुर तूँ गयो अभिनमा सेखा,
सुजस राखि धर स्याम सनाह।
हुवो नहीं मिलणों तो हूँता,
कद मिटसी ओ दुख कछवाह ॥ १ ॥
विभनो तूँ गज गाम बरीसण,
हुई तेण षट् बरणाँ हाँण।
अणमिलणूँ मो हुवो एम तो,
मिटसी किम मोजाँ महराँण ॥ २ ॥

* यह गीत कविया मुरारिदानजी अयाचक जयपुरवालों से प्राप्त हुआ था।—ह० ना०।

साजी बाजी सुरग सिधायो,
मिळ दान खग दुवाँ मद।
भेट हुवो नँह जको भाजसी,
कूरम धोको मूझ कद ॥ ३ ॥
देवावत लिछमण जग दाता,
हेळा करण खिताब हुवो।
भिड़जाँ भड़ाँ चारणाँ भाटाँ,
मुँहगा वरतणहार मुवो ॥ ४ ॥ ५ ॥*

शब्दार्थ—अभिनमा = अपूर्व और अनुपम। स्याम सनाह = स्वामी का रक्षक। तो हूँता = तुझसे। कद = कब। बिभनो = मर गया। बरीसण = दानी। तेण = उससे। षट् बरणाँ = मारवाड़ में जती, जोगी, संन्यासी, जंगम, द्विज और चारणों को षट् बरणों (षट् दरसणों) में गिनते हैं। मोजाँ महराँण = दान का समुद्र। साजी बाजी = बनी बात में, धन-वैभव रहते रहते। दुवाँ = दोनों के। देवावत = रावराजा देवसिंह का पुत्र। लिछमण = सीकर के राव राजा लिछमणसिंह जिन्होंने सं० १८९२ से १८६० तक राज्य किया। हेळा = दान की लहर। भिड़जाँ = घोड़ों को। भड़ाँ = योद्धाओं को। मुँहगा = महँगे, बहुमूल्य।

भावार्थ—हे अपूर्व, अनुपम और स्वामी-रक्षक! तू अपना यश

---

* गीत ३, ४, ५ कविया मुरारिदानजी अयाचक से प्राप्त हुए हैं और उन्हीं ने सबकी टीका की है।—ह० ना०।

(इस पृथ्वी पर) छोड़कर स्वर्ग को चला गया। हे कश्यपवंशी ! इसलिये मेरा यह दुःख कब दूर होगा ? ॥ १ ॥

हे हाथी और गाँवों के दान देनेवाले ! तेरी मृत्यु से याचकों की बड़ी हानि हुई। हे दान के समुद्र ! तेरे साथ मेरी भेट नहीं हुई सो मेरा यह दुःख कैसे दूर होगा ? ॥ २ ॥

तू संपूर्ण धन-वैभव के होते हुए भी दान और खड्ग के अभिमान सहित स्वर्ग को चला गया ! हे कूर्मवंशी ! तुझसे मेरी मुलाकात नहीं हुई सो मेरा यह धोखा कब मिटेगा ! ॥ ३ ॥

हे संसार को दान देनेवाले राव राजा देवसिंहजी के पुत्र लक्ष्मण-सिंह ! तेरे दान की महिमा से तुझे कर्ण (पांडुपुत्र कर्ण) की पदवी प्राप्त हो गई थी। (शोक ! महाशोक !!) आज घोड़ों, योद्धाओं, चारणों और भाटों को महँगा (बहुमूल्य) रखनेवाला इस संसार से कूच कर गया !!!

५—गीत

नँह पंचाँ जाय लाकड़ी नाँखै,
घणाँ जोर सज वियाँ घराँ।
चाड़ी करै कचैड़ी चढिया,
नीर ऊतरै तुरत नराँ ॥ १ ॥
बिणज विभो हल हाँसल विगड़ै,
कुबद कमाई जगत कहै।
झगड़ो लागै जिकाँ झूँपडाँ,
रगड़ो तलबाँ तणाँ रहै ॥ २ ॥

महलो कुशल विराणैं मूँडै,
सूझ हमेस बाँटणो सेस।
कजियारो कीजै मुँह कालो,
कजिया में नितनवो कलेस ॥ ३ ॥
राखै संप जिका धन राखै,
बाँको दाखै साँच विध।
न्याय नीमड़ै जितै नीमड़ै,
राज चढ़ै ज्याँ तँणी रिध ॥ ४ ॥ ६ ॥*

शब्दार्थ—लाकड़ी = लकड़ी, यहाँ इस शब्द का यह भाव है—"न्याय के लिये निवेदन करना। वियाँ = अन्य। चाड़ी = बुराई करना। कचैड़ी = कचहरी, अदालत। विणज = व्यापार। विभो = वैभव। हाँसल = कर। कुबद = खोटी। जिकाँ = जिनके। रगड़ो = झंझट, आपत्ति। तलबाँ तणों = अदालत के बुलावों का। महली = महिला, स्त्री। विराणैं = दूसरों के। मूँडै = मुख से। सूझ = दीखे। बाँटणो = वितीर्ण करना। सेस = सीरणी, प्रसाद। कजियारो = झगड़े का। नित नवो = नित्य नया। संप = एका, एकता। दाखै = कहता है। जितै = जब तक। रिध = ऋद्धि, संपत्ति। नीमड़ै = समाप्त होवै।

भावार्थ—जब कोई मामला आ पड़े तो पंचों से तो फैसले के लिये निवेदन नहीं करे, और दूसरे घरों के बल से अर्थात् दूसरों की

* यह गीत कवि हिंगलाजदानजी बारैठ से मिला और उन्हीं ने टीका की तथा अन्यत्र भी शंकाएँ मिटाईं। —ह० ना०।

हिमायत से अदालत में चुगली कर देते हैं अर्थात् दावा कर देते हैं। दावा करने के बाद ऐसे मनुष्य शीघ्र ही शक्तिहीन हो जाते हैं ॥ १ ॥

उन मनुष्यों का व्यापार, वैभव और खेती का हासिल बिगड़ जाता है और उनके इस कृत्य की सब संसार निंदा करता है अर्थात् संसार ऐसा कहता है कि देखो कैसी बुद्धि बिगड़ी है। जिन घरों में ऐसे झगड़े लग जाते हैं, उनके कचहरी के बुलावों की आपत्ति लगी ही रहती है ॥ २ ॥

ऐसे मनुष्य (झगड़ेवाले) अपनी स्त्री की कुशल दूसरों के मुख से ही सुना करते हैं। उनको तो मुकद्दमे की सफलता के लिये सीरणी (देवता के मिठाई वगैरह चढ़ाकर) वितीर्ण करने की ही सूझती है। कवि कहता है कि झगड़े का मुँह काला करो, क्योंकि इसमें (झगड़े में) नित्य नया क्लेश प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

कविराजा बांकीदासजी सत्य कहते हैं कि जो पुरुष एकता रखते हैं वे ही धन की रक्षा करते हैं, नहीं तो जब तक फैसला समाप्त होता है तब तक मुकद्दमेबाजों की संपत्ति समाप्त हो जाती है।

(१) गीत*

(चांपावत खुमाणसिंह जी हेमालेगलिया चारणां वजोग)

सुज दुरलभ रणाँ बल सिधाँ साधकाँ,
जोगीराजाँ दुलभ जग।

---

* गीतों के आदि में अंक-संख्याएँ मूल के गीतों की दी गई हैं। और अंत में सिलसिले की संख्याएँ दी गई हैं। इन संख्याओं को ब्रेकेटों में ( ) रखा गया है।

खाटण सुजस भेटियो खूमै,
नराँ सुराँ बच जको नग ॥ १ ॥
अडसट तीरथ तणाँ आभरण,
चावौ पावन चार चक ।
राखण बात सेवियो रड़मल,
जग जणणीवाळो जनक ॥ २ ॥
मुकनावत कुळ जुग नै मूके,
सतजुग तेथ गयो ततसार ।
पूरब पंचम उदध न परसे,
अनड परसियो जको उदार ॥ ३ ॥
हर धर ध्याँन कमध हेमाळै,
परिहाँ चाढ़ेवा प्रभत ।
किसन वजोग चारणाँ कारण,
गळियो जुजठळ राव गत ॥ ४ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सुज = वही । रषी = ऋषि । बल = बलि, फिर । खाटण = पैदा करने के लिये । खूमै = खुमाणसिंह चाँपावत जो चारणों के हित के लिये हिमालय गला था । जको = वह । नग = पहाड़, यहाँ पर हिमालय पहाड़ । बच = मध्य । आभरण = आभूषण । चावौ = प्रसिद्ध । चक = दिशाएँ । रड़मल = यहाँ पर रणमल की, जो जोधपुर बसानेवाले जोधाजी का पिता था, संतति से अर्थ है । मुकनावत = मुकुंदसिंह का पुत्र । तेथ = वहाँ । पूरब........पर से = यहाँ पूर्व दिशा के ९ तीर्थस्थानों से मतलब

है। अनड = अनम्र हिमालय। परिहाँ = पूर्वजों को। चढेवा = चढ़ाने के लिए। प्रभत = प्रसिद्धि। किसन = श्रीकृष्ण। वजोग = वियोग।

(२) गीत

श्री महिपति मान रीजवै गुणस्रज,
कवि समराथ इसो नहि कोय।
मान समापै लाख माँगणाँ,
जसा गजनरा विरदाँ जोय॥ १॥
प्रसन करै नवकोट पतीनूँ,
ईहग कुण एहौ अवरेख।
दूण पचास हजार दिए दस,
दादाँ तणो विसेसण देख॥ २॥
रीजावै कमधाँ राजा नै,
वीदग केहो उकति विसाल।
विजाहरौ सौसहँस बरीसै,
भूप विरद परियाँरा भाल॥ ३॥
नंद गुमान सदा निकलंकत,
बाधै छत्रधराँ इणवार।
कर आचार ऊजलो कीधौ,
इल गज बंध तणो आचार॥ ४॥ ८॥

शब्दार्थ—रीजवै = प्रसन्न करे। गुणस्रज = गुण वर्णन करके। समराथ = समर्थ। समापै = समर्पण करते हैं, देते हैं। माँगणाँ =

याचकों को। जसा = महाराजा यशवंतसिंहजी, जो औरंगजेब के मनसबदार थे। गजनरा = गजसिंहजी के। यह महाराज, यशवंतसिंह जी के पिता थे और इन्होंने विक्रमीय सं० १६७६ से १६६९ तक राज्य किया। ईहग = चारण। अवरेख = निश्चय। दस = यहां "दत" शब्द होना चाहिए जिसका अर्थ 'दान' है। वीदग = चारण। केहो = कौन। विजाहरै = विजयसिंहजी के पौत्र। इन विजयसिंहजी ने सं० १८०९ से १८५० तक राज्य किया था। बरीसै = देता है। परियांरा = पूर्वजों के। गुमान = गुमानसिंहजी, जो विजयसिंहजी के छोटे पुत्र थे। बाधै = संपूर्ण। छत्रधरां = राजाओं में। इणवार = इस समय। कर आचार = अपने पूर्वजों के आचार (व्यवहार) को करके। इल = पृथ्वी पर। गजबंधतणो = गजसिंहजी का।

भावार्थ—ऐसा समर्थ कौन कवि है जो अपनी कविता के द्वारा महाराज मानसिंहजी को प्रसन्न करे। मानसिंहजी तो अपने पूर्वज यशवंतसिंहजी और गजसिंहजी के विरद (बड़ाई) को देखकर याचकों को लाख पसाव दान देते हैं ॥ १ ॥

(नोट—आगे के दोहों में भी ऊपर जैसा ही भाव है)

(३) गीत

साधनसिध उभै एक साधन सौं,
बांका सूधो बाट बह।
रीजै देवनाथ रीजायाँ,
पाव जलंधर मान पह ॥ १ ॥

मारग बाग तणौ मति मेटे,
भगत निरंतर उर-धर भाव।
तूठै सुतन महेस तूठिया,
सिष मयनक गुमनेस सुजाव ॥ २ ॥
स्रम थोडै वोह नफो साँपजै,
बीसर मती अनोखी बात।
रहै प्रसन्न ऐ आयस रीधै,
छात सिधाँ नरपतियाँ छात ॥ ३ ॥
कहवत दुनियाँ माँझ कहाँणी,
एक पंथ दोय काज अगै।
एक पंथ त्रिण काज अठै इल,
जिण अवगाहण भाग जगै ॥ ४ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सिध = सिद्ध हो जाते हैं। सूधी = सीधा, सरल। बाट = मार्ग। बह = चल। देवनाथ = यह मानसिंहजी के गुरु थे। पाव = "पाव" जोगी की पदवी। जलंधर = यह नाथ संप्रदाय के एक बड़े भारी आचार्य हुए हैं। पह = राजा। मति = नहीं। मेटे = मिटा, छोड़े। भगत = भक्ति। तूठै = प्रसन्न होते हैं। सुतन महेश = महेशनाथ के पुत्र, देवनाथ। सिष = शिष्य। मयनक = जलंधर नाथ के गुरु का नाम। गुमनेस = गुमानसिंहजी। यह जोधपुर नरेश विजयसिंहजी के कनिष्ठ पुत्र थे। सुजाव = पुत्र। वोह = अधिक। बीसर = भूलै। आयस = जोगियों में अपने आचार्य को 'आयस' कहते हैं। रीधै = प्रसन्न होने से। छात

शब्दार्थ—ह्य = लिये। दाखै = कहता है। चूंडाहरा = चूंडा के वंशज। चूंडाजी वीरमदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह बड़े वीर पुरुष हुए थे। इन्होंने अपने पिता का गया हुआ राज्य जोहियों से पुनः ले लिया था। और मंडोर के राज्य को, जो पहिले इन्दे राजपूतों का था, मुसलमानों से लड़कर सं० १४५१ में प्राप्त किया था। सं० १४६४ में नागोर के नवाब को यहाँ से चढ़ाई करके भगा दिया। वह सं० १४६६ में मुलतान के अधिकारी फीरोजमुहम्मद को आठ हजार सेना के साथ चूंडाजी पर चढ़ा लाया। इस युद्ध में बहुत से राठोड़ों के साथ चूंडाजी काम आए और नागोर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। चौजां = चोचले, आनंद। ऐहिज = यही। प्रवीत = उत्कृष्ट धन। कहातै = यहाँ कहावै पाठ होना चाहिए। अगजीत = ज्ञात होता है कि कवि ने इस शब्द से महाराज अजीतसिंह की ओर इशारा किया है, जो महाराज यशवंतसिंह के पुत्र थे और जिन्होंने संवत् १७३६ से १७८० वि० तक राज्य किया था। मंगण = याचक। सुपहांचो = राजाओं की। भ्रम = भ्रम। कथ = कथा। नवसहंसा समथ = हे समर्थ राजा नवकोटी के।

नोट—बांकीदासजी को महाराजा मानसिंहजी ने लाख पसाव बखशिश किया तब आसिका में जो गीत कहे उनमें से यह गीत है। अर्थ स्पष्ट है।

(५) गीत

सिषर गिरां मोरां सबद नाच सरसाविया,
पाविया जल तरां त्रषा पाली।

आविया उमड घणस्याँम बीती अवध,
आविया नहीं घणस्याँम आली ॥ १ ॥
आपगां दलण गीषम जलण आहैटो,
विसे षटचलण कलियां कदमव्रन्द ।
वारवाहाँ कई आठ मासाँ बलण,
नह कई बलणकूँ जसोमत नंद ॥ २ ॥
हरै लीनो हियो तनाँ हरिआलियाँ,
सोर कर सरे दादुर सुहाया ।
गाज ऊंडो करे मेघ आया गयण,
नागरी कानजी घरे नाया ॥ ३ ॥
विवध घणमाल नभचक्र माझल बसी
रवि ससी न दीसै दिवस रजनी ।
मनोभव लगाडै बाँण मोहण मदन,
सहंस बातां सजन आँण सदनी ॥ ४ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—तरां = वृक्षों को। त्रषा = प्यास। पाली = पालना की, मिटा दी, बुझा दी। आपगां = नदियां। दलण = दलनेवाली, नाश करनेवाली। आहैटी = यहाँ पर "आहुटी" शब्द होना चाहिए, 'आहैटी' में एक मात्रा अधिक है; नाश हो गई। विसे = बस गये। षटचलन = छै से चलनेवाले अर्थात् छः पांवों से चलनेवाले, भौंरे। वारवाहां = वारिवाह, बादल। कई = कहा। वलण = लौटने को। सरे = तालाबों पर। गाज = गर्जना। ऊँडो = गहरी। गयण = आकाश। नाया = नहीं आए। मनोभव = कामदेव। लगाडै =

लगाता है। सजन = इसके स्थानपर "सदन" और "सदनी" के स्थान पर "सजनी" पाठ होना चाहिए।

भावार्थ—सरल ही है।

(६) गीत*

पथिक जाय मथुरा कहे जादवाँपतोनूँ,
आपरा मिलणकूँ बात उरलो।
आय गोकल मही लेर सुर अनोखाँ,
मया कर सुणावो फेर मुरली ॥ १ ॥
सुरभियाँ चरावो संग लावो सषा,
चैल आवो कदम तणी चाँही।
पोष हित वेल गावो चरित पेमरा,
मुरलिका सुणावो घोष माँही ॥ २ ॥
अटक गोपी मही दांण उघरावजै,
पावजै अधर रस गोरधन पास।
धर लुकट मुकट वन वीथियाँ धावजै,
बाँसरी वावजै अहीराँवास ॥ ३ ॥
पुलिण रविसुता फहरावजै पीतपट,
आवजै रासथल ब्रजनाथ आय।
काँन कवार विहरि गली ब्रज कुंजरी,
सुभ रली कीजियै लाडली साथ ॥ ४ ॥ १२ ॥

---

* यह गीत "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है।—ह० ना०

शब्दार्थ—जादवांपतीनूं = श्रीकृष्ण को । आपरा = आपके । मिलणकूँ = मिलने के लिये । उरली = हृदय में धारण की, हृदय की । लेर = लेकर । सुर = स्वर । मया कर = कृपा करके । सुरभियाँ = गायें । चैल = यहाँ "छैल" शब्द होना चाहिए । चांही = यहाँ पर भी "छांही" ही होना चाहिए । वेल = यहाँ पर 'वल्" शब्द होना चाहिए, (वल् = फिर)। घोष = ग्वालियों का गांव । अटक = रोक करके । मही = दही । दांण = कर, महसूल । उघरावजै = वसूल करिए । पावजै = पिलाइए । बांसरी = बांसुरी । वावजै = बजाइए । पुलिण = पुलिन, किनारा । रविसुता = यमुना नदी के । आथ = एथ = यहाँ । रली = रास ।

(७) गीत*

अडर मूल डर न धारै कंसरी आँणरो,
पिता माता तणो डर न पूठै ।
जतनसूँ सषो दध वेचवा जावतां,
अचानक कांनरी धाड़ ऊठै ॥ १ ॥
गा आल दोडै करै एकठी गोपियाँ,
चीर षाँचै घणै हांस चाडै ।
गिरावै धूत गोरस भरी गागरां,
पूत जसुदा तणों राह पाडै ॥ २ ॥
करग मसलै उरज तोडै अँगियाँ कसाँ,
चित चलै अलौकिक करै चालौ ।

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है ।—ह० ना० ।

वेष नटतणौ षडौ बनबोथियाँ,
बटपडो कुँवर व्रजराजवालो ॥ ३ ॥
मगाज भइयो वहै चाहि न रषै मुकट,
बन सघण माँहि मुरली बजावै ।
इसा हर धकै चढ इसी कुण अहीरी,
अँगूठो दिषावे घराँ आवै ॥ ४ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—मूल = किंचित् भी । आंणरो = आज्ञा, हुकूमत, दोहाई । पूठै = पीछे की ओर । धाड़ ऊठै = लुटेरों का समूह उठता है । गा आल = इस स्थान पर "गोआल" शब्द होना चाहिए, (गोआल = ग्वालिये) । एकठी = इकट्ठी । षांचै = खींचते हैं । घणै हांस चाडै = बहुत ज्यादा मसखरी करके । धूत = धूर्त, बदमाश । राहपाडै = मार्ग में लूट लेता है । करग = हाथ से । कसा = डोरियां जो अँगिया बांधने की होती हैं, कसणां । तोडे = यहां पर "तोड" शब्द चाहिए क्योंकि इस तुक में एक मात्रा अधिक है । चित चलै = मन चलायमान हो जाता है । (ऐसे) अलौकिक चालौ (= खेल, तमाशा) करै । बटपडो = लुटेरा । मगाज...... मुकट = इन शब्दों का कुछ अर्थ ठीक ठीक नहीं होता है अतः यहां पर "मगज भरियोवहै छांहि निरखै मुकट" पाठ हो तो उत्तम है, जिसका अर्थ यह है = गर्व में भरा हुआ और अपने मुकुट की परछांही को देखता फिरता है । हर = हरि, श्रीकृष्ण । धकै = सामने, सम्मुख । धकै चढ = सम्मुख आकर । अँगूठा दिषावे = यह मुहावरा है । इसका अर्थ है—चिढ़ाकर, यहां बचकर ।

भावार्थ—गोपियां आपस में कह रही हैं; और अर्थ सरल ही है।

(८) गीत*

अत परमल पसर पसरिया आँबा,
सुक पिक बोलै सुषद सराग।
रतिपति ताँणै धनुष जठै रुच,
बरसाँणै देषण ज्यूँ बाग ॥ १ ॥
बेली तरलाँ तराँ विलूंबी,
बण हरियाली वीस वसा।
त्रप त्रषभाँण तणाँ हर नागर,
उपवन जोवण जोग इसा ॥ २ ॥
भणणै भमर वास रस भूला,
सब रत फल दल फूल समाज।
वलसै रस बस जाय बगीछाँ,
राधा जनक तणा व्रजराज ॥ ३ ॥
मचियै झड़ मकरंद माधवी,
नंद सुतन दुष सरब नसंत।
बणियो रहै बाडियां बागां,
बरसाणै सासतो बसंत ॥ ४ ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—अत = अति, ज्यादा। परमल = परिमल, सुगंध। पसरिया = फैले। आँबा = आम। सराग = राग सहित। जठै =

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है।—ह० ना०।

जहाँ पर। बरसाणै = बरसाना ग्राम। देखण ज्यूँ = देखने जैसा। तरलाँ = बढ़कर। तराँ = वृक्षों के। विलूंबी = लिपट गई। बण = वन। वीसवसा = बीस बिस्वे, पूर्ण। हर नागर = हे श्रीकृष्ण। अप..............इसा = हे श्रीकृष्ण, राजा वृषभानु के ऐसे बाग देखने के योग्य हैं। भणणै = भिन भिन कर रहे हैं, गूँज रहे हैं। बास रस भूला = सुगंध से मतवाले होकर। रत = ऋतु। वलसै = विलसो, उपभोग करो। बगीछाँ = बागों में। मचियै...... माधवी = मकरंद और माधवी की झड़ी (वर्षा) लग रही है। सासतो = हमेशा।

भावार्थ—कोई दूती श्रीकृष्ण को राधा के पास ले चलने को वृषभानु के बगीचे में वसंत ऋतु का हर समय निवास बता रही है।

(६) गीत*

सिललधार जलधर लगौ सूँड आकृत श्रवण,
चमँकियो लोकबल कमण चालै।
जण समै धरै गिर धणी ते जिम जके,
पूज सुरपत तणी भलाँ पालै॥ १॥
प्रलै व्रज करेवा नीम दाँमण पतन,
गयण फूटै घटा भीम गरजै।
उठावै अछलतो जेम हलधर अनुज,
बल तके यंद्रछो भलाँ वरजै॥ २॥
गोप गायाँ त्रिया सहत वसिया गिरत

---

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका का प्रतीत होता है।—ह० ना०।

चिरत अदभुत तणी करत चरचा ।
आप जिम करग नग थपै दर उचत ऐ,
ऊथपै पुरंदर तणी अरचा ॥ ३ ॥
नाम गोवँद थयौ नमाँ नँदराय नँद,
अमँद जस गोरधन आभ अडियो ।
छोड़ आसण गयंद धाक माने छली,
पाकसासण बली पगां पडियो ॥ ४ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—सिललधार = सलिलधार, जल की धारा । आकृत = आकृति । श्रवण लगौ = चूने लगा, बरसने लगा । चमँकियो = आश्चर्य किया, भयभीत हुआ । कमण = किसका । ते = यहाँ "तो" शब्द चाहिए । तो = तेरा । धणी = स्वामी । पूज = पूजा । भलाँ = ठीक । पालै = रोकै । जण समै........भलाँ पालै = हे स्वामी (श्रीकृष्ण), तुम्हारी तरह जो उस समय गिरि को धारण करे (उठाए) उसी का इंद्र की पूजा को रोकना ठीक है । नीम = नींव, निश्चय । दामण = बिजली । गयण = आकाश । भीम = अत्यंत, घोर । अछलतो = यहाँ "अचलतो" पाठ होना चाहिए । बल = बलि, पूजा की सामग्री । तके = वह । यंद्रछी = यहाँ "इंद्रची" पाठ होना चाहिए । ची = की । गिरँत = "गिरँद" पाठ चाहिए । गिरँद = पर्वत । चिरत = चरित्र । करग = हाथ पर । नग = पहाड़ । थपै = स्थापित करे । दर = असल में, वास्तव में । ऊथपै = उत्थापित करे, उठावे, रोके । अरचा = पूजा । थयौ = हुआ । नमाँ = नमस्कार करते हैं । आभ = आकाश । अडियो = अड़ गया,

लग गया। धाक = भय। माने = मानकर। छली = कपटी।
पाकसासण बली = बलवान् इंद्र। पगां = चरणों पर।

भावार्थ—सरल है।

(१०) गीत*

कमल मुगट गाढौ करै पीतपट बाँधकट,
भ्रात बल हाथ दे लकुट भा़ली।
कुमलियापीड सिर विकट आग्राज कर,
कडछियो कांन नटराज का़ली॥ १॥
कमुद-जन विकस सकुछै कमल-कंस कुँभ,
भावकाँ चकोराँ नयण भायौ।
सबल़ तम तौम मथुरा गयंद तणै सिर,
अकल गोकल तणौ चंद आयौ॥ २॥
उचजी कुंभथल थाप जडकी उरड,
तुरत कर एकसूं बजी ता़ली।
करी मुख रदन कालीदमण काठिया,
मही मूल़ो कढो जाँण मा़ली॥ ३॥
मद सिलल तणाँ चाँटा हियै नीलमण,
राजिया रुधर चाँटा पदमराग।
अडग पग मांड राधारमण उडायौ,
नग समौ विलँद मग विप गगन मग नाग॥४॥१६॥

---

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है।"—ह० ना०।

शब्दार्थ—कमल = मस्तक। गाढ़ै करै = कस कर। बल = बलदाऊ। भालौ = देखो। कुमलियापीड = कंस का हाथी कुवलयापीड। आगाज कर = गर्जना कर के। कडछियो = झपटे। विकस = विकसित हुए। सकुछै = यहाँ "सकुचै" पाठ होना चाहिए। कुंभ = यहाँ 'कुञ्ज' पाठ होना चाहिए। भावकां = भावुक, सहृदय, दर्शक। तौम = समूह। अकल = पूर्ण स्वच्छ, उज्ज्वल। उचजी = यहाँ "ऊछजी" पाठ होना चाहिए। ऊछजी = उछलकर, झपटकर। कुंभथल = कुंभस्थल। थाप = थप्पड़। जडकी = मारी, लगाई, जडी। उरड = पराक्रम। करीमुख = हाथी के मुँह से। काठिया = यहाँ "काढिया' पाठ होना चाहिए। चांटा = "छांटा" पाठ होना चाहिए। राजिया = सुशोभित हुए। नग = पहाड़। विलँद = बुलंद, बड़ा। विप = यहाँ "वप" या "वपु" पाठ होना चाहिए, (वप = शरीर)। नाग = हाथी। नग......नाग = इस तुक में दो मात्राएँ अधिक हैं, "मग" शब्द एक ही स्थान पर होना चाहिए। "मग" शब्द एक स्थान पर से निकालदेने से यह पाठ रह जाता है "नग समौ विलँद वप गगन मग नाग"।

११—गीत

कीजै नींबरी गूँट ज्यूँ पीजै प्यालौ कालकूट केम,
मणाँ तोल तोलियाँ तुलीजै केम मेर ॥
बीजौं कलाँ पाँतरै अमीरदौलो गेर बैठो,
न जावै भलीयौ औढौ कलौ रायाँनेर ॥ १ ॥

दगै तोफाँ वहै गोलारोहला मोरछा दोला,
जो लार सकै सूता सेरनै जगाय ॥
भूरजाल वांकडौ बीटीयौ दूजां गढां भैलौ,
लोहां जाल धसै केहौ नसैणो लगाय ॥ २ ॥
लेर बीडो लीधी जिका पूंनारी संपदालूट,
फरकावादनै कीधी षाष साषफेर ॥
तकाँ लेवीयै देर हलौ न कीधौ वजाड तासा,
उदोंरा पतारौ कोट दूसरौ आसेर ॥ ३ ॥
रायाँनेर वज्रसौ वणायौ गाढे रावरूपै,
आयौ श्रीगोपाल बेल चाढे वंस आब ॥
हजारां रसाला वाढे अषाडै दिखाया हाथ,
नबीरी कसमां काढे वखाणै नबाब ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गूँट = गुटक। नींबरी = नीम की। केम = कैसे। मेर = मेरु पर्वत। बीजौ = दूसरा। कलां = किला। पांतरै = भूलकर धोखे में। अमीर = नवाब मीरखाँ जिसने जोधपुर की गद्दी मृत राजा भीमसिंहजी के पुत्र धौंकलसिंह को दिलाने के लिये सवाईसिंह आदि के साथ जोधपुर का किला घेर लिया था, जिसने उस समय पर राजस्थान में बहुत लूट-खसोट मचा रखी थी और जो अंत में अँगरेजी सरकार के संधिपत्रानुसार टोंक आदि लेकर नवाब बन गया था। दोलौगेर = घेरा डालकर। भलीयै = यहाँ भेलियै पाठ होना चाहिए। भेलियै = घुसना, अंदर जाना। ओढ़ौ = विकट। तोफां = तोपें। दोला = चारों ओर। लारसकै = यहाँ बकारसकै पाठ होना चाहिए

क्योंकि एक मात्रा कम है। भूरजाल = किला। वांकडो = बांका, विकट। बीटियो = घेरा दिया। भैलौ = यहाँ 'भैलै' पाठ होना चाहिए। भैलै = धोखे में। धसै = घुसना। केहो = कौन। नसैणी = सीढ़ी। लेर = लेकर। बोडो = बीड़ा। पूनारी = पूना शहर की। सन् १८०२ ई० में जसवन्तराव हुल्कर के साथ अमीरखाँ ने, सदाशिवराव बख्शी वायस साहब पर जो सेंधिया के तरफदार थे और जिनके साथ में शहामतखाँ व नागोजी पंडित भी था, चढ़ाई की जिसमें सेंधिया हार कर पूना भाग गया। फिर हुल्कर ने और अमीरखाँ ने पूना पर चढ़ाई की जिसमें वायस साहब तो काम आ गए और दौलतराव सेंधिया और पेशवा बाजीराव वगैरह भाग गए। फरकाबाद = शहर का नाम जो देहली के पास है। फरकाबाद का लूटना तो किसी इतिहास से नहीं जाना जाता है। किंतु ऐसा मालूम होता है कि जब जसवंतराव हुल्कर "माली साहब" को हरा चुका था उस समय जनरल लेक ने जसवंतराव को फरुखाबाद में हराया था और होल्कर वहाँ से भाग कर भरतपुर आ गया था, उस समय उसने भील से अमीर छोटा को अपनी मदद के लिये बुलाया था और वह (अमीरखाँ) कई गांवों शहरों को लूटता हुआ हुल्कर से भरतपुर में आ मिला था। संभव है इसी समय अमीरखाँ ने फरुखाबाद को लूटा हो क्योंकि शहरों के नाम तो कहीं दिए नहीं गए हैं जिससे ठीक ठीक बातें मालूम हो सकें किंतु लूट-मार अवश्य की गई थी (तवारीख टोंक से)। तकाँ = उनको उन शहरों को। बजाड = बजाकर। तासा = एक प्रकार का चमड़े से मढ़ा हुआ छोटा चपटा ढोल, जो सीने के आगे रख कर बाँस की

खपच्चियों से बजाया जाता है। उदोंरा = यहाँ उदाँरा पाठ होना चाहिए, उदाँरा = उदावत राजपूतों का। पतारो = यहाँ 'पतीरो' पाठ होना चाहिए, पतीरो = मालिक का। आसेर = किला। रावरूपै = राव रूपसिंह जिन्होंने इस किले को बनाया था। बेल = सहायता। आब = आभा, कांति। अखाड़ै = मैदान में।

नोट—इतिहास से तो ज्ञात नहीं होता कि किस समय पर अमीरखाँ ने रायनेर के ऊपर चढ़ाई की थी किंतु ऐसा ज्ञात होता है कि जब अमीरखाँ ने मृत राजा भीमसिंह (जोधपुर) के पुत्र धौंकलसिंह की तरफदारी करके महाराजा जगतसिंह (जयपुर), महाराज सूरतसिंह (बीकानेर), पौकर्ण के ठाकुर सवाईसिंह आदि के साथ महाराजा मानसिंह जी के विरुद्ध जोधपुर पर चढ़ाई की थी, उस समय महाराजा मानसिंह जी ने बीस लाख रुपया देने का वादा करके अमीरखाँ को अपनी तरफ मिला लिया था। इसलिये फिर जोधपुर पर चढ़ाई करनेवालों को सफलता नहीं मिली और वे अपने अपने स्थान पर वापिस चले गए। अमीरखाँ कई कारणों से वहीं रुक गया था। इसी समय पर संभवतः इसने रायनेर पर घेरा डाला हो जिसका वर्णन कविराजा बांकीदास जी ने उक्त गीत में किया है।

१२—गीत

मने मान डर गुमर चोड़े अगर मीररै,
हैदराबाज जोडे दुहुँ हाथ।
भीर आवौ जपै सुरतसी तणा भड,
नरभावै धींजियै जोधपुर नाथ ॥ १ ॥

अमरसर बथूंडै थेट लाहौर अब,
छलीषांमे दरब ताप छाया।
करो मो मृत बीकांण पाया कहै,
अजा दूजा तणां कटक आया ॥ २ ॥
सायबाँ फिरंगाँ धकै जंगल सोहड़,*
घात नज दुष पढै सोछ गाढै।
जुडै मांसजा जैपुर तणां जिलासूँ,
किलासूँ मांन माहराज काढै ॥ ३ ॥
तुरक हिंदू रहै फिरंग मालकत,
के कहै बीकांणरा कूककरणाँ।
भूप नव कोटरा अगर हासल भरै,
चाकरी करौ सिर धरौ चरणाँ ॥ ४ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—गुमर = घमंड। चोडे = यहाँ 'छोडे' पाठ होना चाहिए। अगर = सन्मुख। हैदराबाज = तत्कालीन समय में हैदराबादी रिसाला नामक एक सेनादल भी राजस्थान आदि देशों में खूब लूट-मार करने में प्रसिद्ध हो गया था तथा रुपयों के लोभ से हर किसी की तरफदारी करके लड़ने को तैयार रहता था। कविराजा जी का इसी ओर इशारा है। भीर = यहाँ 'भीड' पाठ होना चाहिए। भीड़ = सहायता। जपै = कहते हैं। सुरतसी = बीकानेर के महाराज सूरतसिंह। तणां = का। भड = योद्धागण। नरभावौ = यहाँ 'निभावौ' पाठ होना चाहिए, निभावौ = पूर्ण करो। बथूंडै = खूब

* "गीत गावै हीयै भींत गाढै" यह और लिखा है।

छानबीन की। थेट = अंत तक। मृत = यहाँ 'मदत' पाठ होना चाहिए, क्योंकि एक मात्रा की कमी है। अजा = यशुवंतसिंह के पुत्र अजीतसिंह। दूजा = दूसरे। धकै = सन्मुख। जंगल सोहड़ = बीकानेर के सुभटगण। नज = यहाँ 'निज' पाठ होना चाहिए। सोछ = यहाँ सोच पाठ होना चाहिए। जिलासूँ = जिलायत से, मदद से। तुरक........मालकत = इस पद में एक मात्रा की कमी है। अतः ऐसा पाठ हो तो उत्तम हो "तुरक हिंदू रहै फिरंगी मालकत" इसका अर्थ होगा "क्या हैदराबादी रिसाले से, क्या जयपुर से और क्या अँगरेजों से किसी से भी इस युद्ध में सहायता नहीं मिली। के = क्या। बीकांणरा = यहाँ एक मात्रा बढ़ती है इसलिये "बीकाण" ही होना चाहिए। कूककरणां = दूत। भरै = यहाँ पर "भरौ" पाठ होना चाहिए।

नोट—महाराज मानसिंह (जोधपुर) ने बीकानेर के ऊपर इसलिये चढ़ाई की थी कि बीकानेर के महाराज सूरतसिंह ने धौंकलसिंह का पक्ष लेकर मानसिंहजी पर चढ़ाई की थी। ९ महीने के घेरे के बाद जब अन्य सहायकगण चले गए तब बीकानेरवाले भी वापिस आ गए और लौटते समय फलैादी को अपने अधिकार में कर लिया। इस पर मानसिंहजी ने समय पाकर बीकानेर पर चढ़ाई की और युद्ध का कुल खर्च तथा फलैादी लेकर सन्धि कर ली।

बाँकीदासजी के स्फुट सवैया, कवित्त, छप्पै आदि ॥

सवैया

माते गयंद घने गरजे घन की रितु मानो घटा घहरानी ।
बंक निसान लगे फहरान पिसाचरु प्रेत उमंग सी आनी ॥
बाजनके खुरतार बजेरु मिवास भजे प्रलयाकृत ठानी ।
मान महीप कियौ दल मानव चढ़ि उतर्‌यौ सिरोही के राव को पानी ॥१॥

शब्दार्थ—माते = मस्त । गयंद = हाथी । खुरतार = खुरताल, घोड़ों की नाल । मिवास = स्थान । भजे = भग गए ।

नोट—(१) इस छंद के अंतिम चरण में गण ठीक नहीं है अतः गति में बहुत फर्क आता है । (२) महाराज मानसिंहजी की सिरोही पर चढ़ाई का हाल "सिरोही का इतिहास" में रा० ब० महा-महोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा इस प्रकार लिखते हैं—"जब जोधपुर के महाराज विजयसिंह का देहांत हो गया तब भीमसिंहजी गद्दी पर बैठे और अपने सब भाइयों को नष्ट कर दिया । मानसिंहजी ने पाली लूटकर जालौर का किला अपने अधिकार में कर लिया । भीमसिंहजी ने इनके विरुद्ध जालौर को घेर लिया । इस समय मान-सिंहजी ने चाहा कि हमको भी अजीतसिंहजी की तरह सिरोही में शरण मिल जावेगी इसलिये अपना जनाना तथा कुँअर छत्रसिंह को सिरोही भेज दिया, किंतु यहाँ के महाराज बैरीसाल ने भीमसिंहजी के डर के मारे इनको शरण नहीं दी; इसलिये इनको लौटना पड़ा । लौटते समय कुँअर छत्रसिंह की आँख एक दरख्त की शाखा लगने से फूट गई । इससे महाराज अत्यंत ही क्रुद्ध हुए । जब भीमसिंहजी की मृत्यु के

बाद महाराज मानसिंहजी गद्दी पर बैठे तब उन्होंने बदला लेने के लिये भूतज्ञानमल को सिरोही पर भेजा। उसने वहाँ खूब लूट-मार की और सिरोही को तबाह कर दिया।

(३) आगे के और छंदों में भी इसी सिरोही राज्य पर चढ़ाई का वर्णन है, वे भी इसी इतिहास से सम्बन्धित हैं।

कवित्त *

केसो इंद्रजीत कुलपति रामसिंहजूकै
चंद प्रथीराजकै खुसाल कहै जनकै।
भंगड़ ज्यों रानकै विहारी जयसिंहजूकै
गंग है प्रवीन अकबर सुलतानकै॥
भूषन सिवाकै लीलाधर गजसिंहजूकै
कवि ज्यौं कवलनैन अनुवरखाँनकै।
कालीदास भोजकै ज्यौं विक्रमकै वयताल
त्यौंही कवि **बाँकीदास** महाराजा **मांनकै**॥२॥

शब्दार्थ—अर्थ सरल ही है।

सवैया

पूरब ओर दिनेस उदै अरु संभु कौ ध्यान पुरानन गायौ।
भीषम सील धनंजय बान विरंच कै आँक त्रिलोक बतायौ॥
भूमकी मंड भुजंगम सीस तैं औ ध्रुव थान अखै छबि छायौ।
एत टरैं तो टरैं पै टरै नहिं **मांन** महीपत को फुरमायौ॥ ३॥

---

* इस संग्रह में यह कवित्त बहुत गौर का है। इसमें अन्य विख्यात कवियों के साथ बांकीदासजी का नाम है।

कवित्त

प्रबल प्रकासै तेज **मांन** रविबंसमनि
ताकी त्रास सिंध से जवन देस धरकै।
दच्छनी सरन आए गाए जसगीत जग
सुन कै पता उर अरिन की दरकै॥
बाँकीदास कहत सिरोही तैं जु भाग्यौ राव
पाग्यौ भय ताकी चतुरंगनी सौं अरकै।
संबत अठारै मांझ गमए अठारै गिर
विनमति अठारै विसेकी बात करकै॥ ६॥

शब्दार्थ—अरकै = अड़कर। गमए = खोए। करकै = कड़कती है, खटकती है।

सवैया

नृप **मांन के बंक** सुभाव बिलोकत चित्त की बृत्ति अचंभो धरै।
चतुरानन आन पढ़ावै विचच्छन तोउन जीभ नकार ररै॥
सुरबैद धनंतर संजुत आन नयौ रच चूरन दैरु अरै।
नहिं जद्यप रीज पचै यहकौं गज गांम गुनीन कौं दान करै॥७॥

शब्दार्थ—विचच्छन = विलक्षण। ररै = कहे। चूरन = चूर्ण। दैरु = देकर फिर। अरै = अड़ना, रोकना। रीज = दातव्यता। पचै = हजम होना।

सवैया

तैं पहिलै तन गाढ़ गह्यौ अरु फौज लई रच खोल खजांनौ।
मांन महीपति के दल आए सक्यौ नहिं थांभ तू वेग भजांनौ॥

राव सौं संभुपुरी यह रीत उचारै अकीरति या जीव जांनौ।
तेरौ तौ नाम लज्यौ सौ लज्यौ पर तोकर मेरौ ही नांम लजांनौ ॥८॥

शब्दार्थ—सक्यौ नहिं थांभ = रोक नहीं सका।

छप्पै

मसत हसत बहु मोल द्वार घूमै खलदाहण।
बालाँ हींसै बाज वणै जांणे रविवाहण॥
कंचण जवहर क्रंत विविध सिंगार बडाई।
पौसाकां परमलै अतर डमरां छबि आई॥
साजां जलूस डेरा सरस नेसहूँत उण तन लसी।
महि **देवनाथ** तो महिरसौं **बंकतणैं** नवनिध बसी ॥९॥

शब्दार्थ—मसत = मस्त। हसत = हाथी। बालां = घोड़ों के बँधने का स्थान। डमरां = सुगंधि, समूह। देवनाथ = महाराज मानसिंहजी के गुरु।

१३—गीत

कंचण खंभ मंडति कीन वरणण छबिकराँ,
झलहल क्रंतपूर झलूस मुगता झालराँ।
अद्भुत बितानां आरंभ मोल अपंपरा,
जोडै डमर डेरां जोग भाद्रव जलधराँ ॥१॥
बिध बिध बनीयां बिसतार चाँदणियाँ वणै,
उज्जल खीरसिंधु अमंद लहराँ ऊफणै।
प्रघटै जटत जवहर पंत अति आछापणैं,
तौराँ **मांन** राजै तखत परस रवितणै॥ २ ॥

अविचल छत्र सुखसुख ओप उछव आँणजै ।
परतख अलंकृत जस पेंज प्रभत प्रमांणजै ॥
बांणक डुलै चमराँ बस इम बाखाँणजै ।
जगमग सूर सीस जरूर ससिकर जांणजै ॥ ३ ॥
उकताँ सुकवि बोलै ऊंच बिरदाँ आवली ।
राजस भडाँ गहमह रूंस पूरण नितरली ॥
बौह जुग तपौनृप धजबंध औ आपह बली ।
मुरधर **गुमाननंद** मयंद थिर महि मंडली ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—क्रंतपूर = क्रांतियुक्त। झलूस = जलूस । मुगता = मोती। झालरां = झालर । मोल = मूल्य । जोडै = समान । डमर = समूह । बांणक = बणाव । गहमह = अधिकता । रूँस = इच्छा । बौह = बहुत । आपह बली = स्वयं बलवान् । मुरधर = मारवाड़ । मयंद = सिंह ।

(जोधपुर की पुस्तक नं० १ से)

[इन छंदों को कविया मुरारीदानजी जयपुरवालों को दिखा कर निश्चय किया गया कि ये छंद संभवतः कविराजा बांकीदासजी की ही रचना है ।]

१४—गीत

कीधौ तैं कोप साजियौ कांनौ, रडमल नै दीधा तै राज ।
चारण वाडांतणी चारणी, लोक मही तूं राखै लाज ॥ १ ॥
वटपाडां धरपाडां वाली, आभ जडां नांखै ऊपाड़ ।
कोय न गाँज सकै कनियांणी, झीझलियाल तुहाला झाड़ ॥ २ ॥

मेछां अपराधियाँ मारणी, भलां सेवगाँ आवै भाव।
करै कराँ छाया तूं करनी, गाजै कुण गढवाडाँ गाव ॥ ३ ॥
बाँका मेहासधू म बीसरै, संकट हरै साँभलै साद।
गढवाडा गढ ओलै गाजै, मढरै ओलै गढाँ अजाद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कानौ = जांगलू का स्वामी जिसको करणीजी ने मारा था। रडमल = रणमल, जो काना के छोटे भाई थे। इनके पुत्र राव जोधाजी ने जोधपुर बसाया। बाडां = निवासस्थान। वट पाडां = लुटेरे। धरपाडां = पृथ्वी छीननेवाले। वाली = उनकी। आभ = आसमान। जडां = जड़मूल से। नाख = डाले। ऊपाड़ = उत्थापित करके। गांज सकै = नाश कर सके। कनियांणी = करणीजी का गोत्र यहाँ संबोधन है। झीझलियाल = हे झाँझरे पहिननेवाली। तुहाला = तेरे। झाड = जमीन। मेछां = म्लेच्छ। गढवाडां = चारणों के। मेहासधू = मेहाजी की पुत्री। साद = शब्द। ओलै = संरक्षण में। मढरै = करणीजी के मंदिर के।

नोट—यह गीत भी करणीजी की स्तुति में है किंतु अधूरा ही है।

१५—गीत

सेषारावनूं मुलतांण सपाहाँ, जडियौ साँकल जाली।
पाछौ जिकौ आंणियौ पूंगल, देवी थै दाढ़ाली ॥ १ ॥
मेलै फौज कामराँ मिरजौ, ऊ जंगल धर आयौ।
केवी तैं भाजै कनियाँणी, जैतराव जितायौ ॥ २ ॥
कोट घेरियौ पैला कटका, अधिक साँकडै आयौ।
के वेला माता तै करनी, बीकानेर बचायौ ॥ ३ ॥

बाँकौ कहै टलै दिन विषमा, धणियाँणी नै धायाँ ।
लोवडियाल ताप नँह लागै, ओलै थारै आयाँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—सेषाराव = यह पूँगल का राजा था जिसको मुलतान के नवाब ने कैद कर लिया था। सपाहाँ = राजा। पाछौ = वापिस। जिकौ = उसको। आंणियौ = लाए। दाढ़ाली = डाढ़ीदार। ऐसा प्रसिद्ध है कि करणजी के कुछ कुछ डाढ़ी थी। केवो = शत्रु। पैला = अन्य। सांकडै = नजदीक। के वेला = कितनी दफा। दिन विषमा = मुसीबत के दिन। धणियांणी = स्वामिनी। धायां = ध्यान करने से, स्मरण करने से। लोवड़ियाल् = हे लोई ओढ़नेवाली (लोई = एक प्रकार का बढ़िया कंबल)। ओलै = शरण में। थारै = तुम्हारे।

१६—गीत

चौसट अवधान तणी चतुराई, बोलण माहराजाँ बिरद ।
षूबी मिली धारणा ख्याताँ, जगदंभा तो क्रपा जद ॥ १ ॥
प्रस्नोत्तर चरचा मत पींगल, भूषण सबद अरथ रस भाय ।
बाँकैदास जाँणिया बिध बिध, राज अनूग्रह जंगल राय ॥२॥
भाषा बृज मारू सुर भाषा, भाषा प्राक्रत जांन भर ।
पायौ रचण रूपगाँ पैंडो, मेहाही थारी महर ॥ ३ ॥
कांमधेनु सुरनर तू करनी, जेण कितौ यक करूँ जस ।
मांनधणी तैं दीधौ मोनूं क्रपा महल चढियौ कलस ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—चौसट अवधान = महाकवि बांकीदासजी चौंसठ बातें एक साथ किया करते थे। षूबी = खूबी, विशेषता। ख्यातां = इतिहास-संबंधी बातें। रूपगां = कविता। पैंडो = मार्ग। मेहाही = हे मेहाजी की पुत्री।

१७—गीत [दुर्गादासजी को]

दुरगदास सोनंग दुहुँ भीच ग्रहियां दुजड,
कथन पतसाहनैं यूँ कहावै।
जसारा ढीकरा बिना गढ़ जोधपुर,
षत्री अनषसै सुज षता षावै ॥ १ ॥
आसक्रन् तणौं बीठल तणौं कहै एम,
पात रछपाल ग्रहियाँ षडग पाँण।
राजरो थापियौ राजन लहै रवद,
धणी म्हे थापसाँ जकौ जोधाँण ॥ २ ॥
भीर म्हे जकाँ भीरी विसंभर,
गाँज कुँण सकै जसराजरा गाव।
राव एक थाप ऊथापिया रिडमलाँ,
रिडमलाँ पुडदड़ी राषिया राव ॥ ३ ॥
जके भड़ छेड़ षेसाड़ **अकबर** जवन,
हाथ है हीया हत हणिँया।
पाम जोधाँण अदू सीग फल पामिया,
साह मोकालिया जगत सुणिँया ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दुजड = तरवार। जसारा = यशवंतसिंह को। ढीकरा = पुत्र। अनषसै = नाराज होंगे। षता पावै = दुःख उठावेंगे। आसक्रन तणौं = आशकरण का पुत्र दुर्गादास। बीठल तणौं = बीठलदास का पुत्र सोनंग। पात = चारण। रवद = मुसलमान। थापसाँ = स्थापित करेंगे। भीर = सहायता पर। भीरी = सहायक। गांज सकै = छीन सकै। रिडमलाँ = भाई, बेटे, जागीरदार।

१८—गीत [बलूजी चाँपावत को]

ए आगम कथन जे सहर आषै, पोह धू जांणे मेर प्रमाँण।
मोनै अस रीझै मोकलियौ, देसू अस बदलो दीवाँण ॥ १ ॥
जग पड बचन कहै जोधपुरौ, पता बचन नह षता पर।
दहबारी काकल हुवै तण दिन, भाड़ौ असचौ लीध मर। २ ॥
प्रभणै गोपालोत यसी परा, जाँण उदै गिर रीत जही।
आहाड़ा अस तसरौ अदलो, नरंद **बलू** चूकसी नहीं ॥ ३ ॥
अमरसु छल गज गाह आगरै, रण चढे षगाँ मार सूं रोद।
चलतै दल घाटी चीतोडा, साकुर भर लीजै सीसोद ॥ ४ ॥
भीड षुरसाँण राँण दल भागा, समहर असर भाँजिया सार।
उभै दलाँ निजर जद आयौ, अस नीलो कमँध असवार ॥ ५ ॥
घाट निराट अहाड़ा घटताँ झाट षगाँ अर घाट जलू।
नरपुर तणौं बचन नरवाहे, बसियो सुरपुर पछै **बलू** ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आषै = कहता है। पोह = प्रातःकाल। मेर = मेरु पर्वत। अस = अश्व, घोड़ा। मोकलियौ = भिजवाया। दीवाँण = उदयपुर के महाराणा एकलिंगजी के दीवाण कहलाते हैं। दहबारी = स्थान-विशेष। कांकल = युद्ध। असचौ = घोड़े का। प्रभणै = दृढ़ वचन कहता है। गोपालोत = गोपालसिंह का वंशज। साकुर = घोड़ा। आहाड़ा = गाँव-विशेष। नरवाहे = निर्वाह किया, निभाया।

नोट—बलूजी चाँपावत के लिये ऐसा प्रसिद्ध है कि यह नागोर ठिकाने के जागीरदारों में से थे और जोधपुर-नरेश गजसिंहजी के बड़े

पुत्र अमरसिंहजी के पास रहा करते थे। कहते हैं कि अमरसिंहजी जिद्दी और धुनी मनुष्य थे। इन्होंने अपने सब जागीरदारों को ऐसा हुक्म दे रखा था कि वे राज की गाएँ भैंसे आदि जानवरों के साथ, जब वे चराई पर जावें, तब रक्षार्थ जावें। इस तरह से जब बलूजी की बारी आई तब यह बहुत बिगड़े और अमरसिंहजी के पास आकर बहुत कहा-सुनी करके वहाँ से अन्यत्र जाने को बिदा हुए। तब अमर-सिंहजी ने ताने के तौर पर कहा कि अब आप जरूर बादशाही सेना को मोड़ेंगे (पराजित करेंगे)। यहाँ से चलकर यह (बलूजी) बीकानेर आए। कई दिनों तक ये यहाँ रहे लेकिन यहाँ के सरदारों से इनकी बनी नहीं इसलिए महाराज के कान भरना शुरू कर दिया। एक दिन महाराज ने फसल के मौके पर इनके पास एक बहुत बढ़िया मतीरा (तरबूज) भेजा। उस समय पर वहाँ पर बैठे हुए किसी ने इनसे कहा कि इस "मतीरे" के भेजने का भी आप अर्थ समझे या नहीं? तब इन्होंने कहा कि नहीं। उसने अर्ज की कि हमारे यहाँ जब किसी को निकालना होता है तब उसके पास "मतीरा" भेज देते हैं। इसका अर्थ यह है कि अब आप "मतीरो" अर्थात् मत रहो। यह सुनकर बिना किसी से कुछ कहे-सुने वे वहाँ से रवाना होकर उदयपुर के महाराणाजी के पास आए। महाराणाजी ने इनको बड़े आदरपूर्वक अपने पास रख लिया। किंतु यहाँ पर भी यह अधिक समय तक न रह सके, क्योंकि यहाँ भी जागीरदार इनसे ईर्ष्या करने लग गए और उन्होंने महाराणाजी से अर्ज की कि बलूजी चाँपावत बिना हथियार शेर का शिकार कर सकते हैं। बलूजी से जब कहा गया तो

इन्होंने इस प्रकार शिकार खेलना स्वीकार कर लिया। निश्चित समय पर सकुशल शिकार हो ही गया। लेकिन साथ ही बलूजी का मन भी महाराणाजी की ओर से फट गया। इसलिये ये यहाँ से भी बिदा हो गए और सीधे बादशाही दरबार में पहुँचने के लिये आगरा आए। बादशाह शाहजहाँ ने इनको अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इधर महाराणाजी के पास एक व्यापारी चार घोड़े लेकर उपस्थित हुआ और इनका मूल्य चार लाख रुपया उसने माँगा। राणाजी ने पूछा कि इनमें ऐसे कौन से गुण हैं जो इनकी कीमत एक एक लाख रुपया है। उत्तर में सौदागर ने निवेदन किया कि मेरे कहे मुताबिक यदि इनमें गुण न निकलें तो मैं इनका मूल्य नहीं लूँगा वरना मैं चारों के मूल्य का हकदार होऊँगा। महाराणाजी ने इसे स्वीकार कर लिया। तब उसने अर्ज किया कि एक बड़ी शिला मँगाई जावे और घोड़े के सुमों के बराबर गहरे खड्डे खुदवाए जावें। इसके बाद ऐसा ही हुआ। घोड़े को उस शिला पर खड्डों में पैर रखाकर खड़ा किया गया और फिर शीशा गलाकर उन खड्डों में भर दिया गया। इस तरह घोड़े के चारों पाँव उस शिला में चिपका दिए गए। इसके बाद सौदागर ने अर्ज की कि अब किसी बढ़िया सवार को इस पर सवार कराइए। आज्ञानुसार वैसा ही हुआ। घोड़े के चाबुक लगाया गया। घोड़ा उछला, चारों सुम शिला में ही रह गए। तब सौदागर ने अर्ज की कि अब जब तक सवार नहीं उतरेगा तब तक घोड़ा बहुत अच्छी तरह काम देगा। इस प्रकार दूसरे घोड़े का पेट चीरकर तमाम आँतें बाहर निकालकर तंग कस दिए गए और अर्ज की कि जब तक इसके यह तंग नहीं खोले

जावेंगे तब तक यह काम देता रहेगा। इस तरह दो घोड़ों की मृत्यु के पश्चात् महाराणाजी ने सौदागर को चार लाख रुपये दे दिया, बाकी दोनों घोड़े अपने पास रख लिए। अब महाराणाजी ने विचार किया कि ये घोड़े किसको दिए जावें, कौन इनकी सवारी के योग्य है। किसी ने किसी का नाम बताया, किसी ने किसी का; किंतु महाराणाजी ने कहा कि यहाँ तो इन घोड़ों की सवारी के लिये कोई भी योग्य व्यक्ति नहीं दिखाई देता। अतः एक घोड़ा तो बलूजी के पास भेज दिया जावे। महाराणाजी का सेवक घोड़ा उस समय लेकर आगरे पहुँचा जिस समय अमरसिंहजी राठौर अर्जुन गोड़ द्वारा फाटक पर मारे जा चुके थे और अमरसिंहजी की स्त्री हाड़ीजी ने सती होने के लिए अमरसिंहजी का मस्तक ला देने को कइयों से कहा था। तब बलूजी ने ही पिछला वैर-भाव भूलकर हाड़ीजी को अमरसिंहजी का मस्तक ला देने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय महाराणाजी का भेजा हुआ घोड़ा आ गया था। वे उसी पर सवार होकर इस युद्ध में गए थे और मस्तक हाड़ीजी को भेज दिया था। और महाराणाजी को यह संदेश भेजा था कि इस घोड़े का बदला मैं आपके काम आकर अवश्य दूँगा। बलूजी का घोड़े सहित इसी युद्ध में निधन हो गया था। किसी कवि ने उस समय का एक दोहा इस प्रकार कहा है—

"बलू कहै गोपालरो, सतियाँ हाथ सँदेश।
पतसाही गढ़ मोड़कर, आवाँ छाँ अमरेश॥"

इसके पश्चात् कहते हैं कि दहबारी के युद्ध के अवसर पर जिस समय राणाजी की सेना हार चुकी थी और भागने लग गई थी, उस समय

बलूजी उसी घोड़े पर, जिसे राणाजी ने आगरे भेजा था, बैठकर इस युद्ध में आए और बादशाही सेना को हराकर अंतर्धान हो गए। उक्त गीत में इसी बात का उल्लेख किया गया है।

१६—गीत [गोपालजी मेडतिया को]

मृत अछडां करण माझिया मारण, कटकाँ अटक केवियाँ काल।
भागा तूझ तणौं भणकारौ, गोपाला न करै गोपाल ॥ १ ॥
सुरताँणौत लियण ग्रह सबलो, सबलाँ षलाँ उतारण सीस।
मुडवा तूझतणौ **मेडतिया**, दुवयण न काहाड़ै जगदीस ॥२॥
यूं लड़ताँ झड़ताँ आवाहे, सिरदाराँ ऊपर समसेर।
मरण दीय गजगाह मँडांणै, मुडियो नह सुणियौ गिरमेर ॥ ३ ॥
जैमलहरा जाँणता जिसड़ो, साच प्रचौ पूरियौ सही।
बढ़ पड़ियौ कागदाँ बचांणौ, नीसरियै बाँचियौ नहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—माझिया = मुख्य मनुष्य। केवियाँ = शत्रुओं का। भणकारौ = झनकार। षलाँ = शत्रु। दुवयण = खोटे वचन। गजगाह = युद्ध। प्रचौ = परिचय।

इति गीत

अथ रस अलंकार

गीत

कांनां नै सबद न भावै श्रुत कटु,
सवदन सुधगत संसकिरत ।
अप्रयुक्त सुध सदन आख्यौ,
अरथ कहण असमरथ अत ॥ १ ॥
निहतारथ लै अरथ प्रगट नहिं,
अनुचित अरथ न अरथ अजोग ।
पूरण रण निरस्थक ठहै पद,
लै अस्लील समझ विध लोंग ॥ २ ॥
ईछते अरथ न कहै अवाचक,
सो संदग्ध रहै संदेह ।
अप्रतीत निज थान ऊघडै,
ग्राम्य गवार वचन मति ग्रेह ॥ ३ ॥
रूढ़ प्रयोजन सक्ति विना रच,
लछ अरथनै यारथ लेख ।
क्रत बिरुद्ध मति बिरुद्ध मति क्रत,
आरोपक आरोप असेख ॥ ४ ॥
करता क्रिया जांण औ करतब,
बिध एही उद्देस विधेय ।

बिध उलटी अविमृश्य विधेयंस,
अरथ कष्ट सौं कष्ट अधेय ॥ ५ ॥
वाक्य दोष प्रतिकूल वरण बद,
प्रगट वरण जिण रस प्रतकूल।
सुध लछण मति अरुच हुऐ सुण,
मति विरुध रस व्रतहत मूल ॥ ६ ॥
नून चाहजै सो पद सौ नहि
पद निकमौहै अधिक पद।
पद इक द्वै वरियांसु कथित पद,
हव सुण पतत प्रकर्ष हद ॥ ७ ॥
रनिवहै आरंभी रचना नहिं,
वल समास पुनरात विचार।
संपूरण कर फेर सराहै,
अरथांतरैकवचक उचार ॥ ८ ॥
दल दूजारौ पद दल दूजै,
जाण अबै अभवन मत जोग।
कवि वांछत पद वाच्यन करही
पढ अनभोहित वाच्य प्रयोग ॥ ९ ॥
कहिणा जोग अरथ पण नहि कह,
अस्थांनस्थन पद निज श्रोक।
वाक्य और पद और वाक्य विच,
लेखै संकारण कवि लोक ॥ १० ॥

वाक्य और व्हैं और वाक्य विच,
गर्भित दोषतणी आ गाथ ।
हांतै सबद प्रसिद्ध प्रसिद्धहत,
कठै निभै भग्नुपक्रम काथ ॥ ११ ॥
अक्रम क्रम नहि हुऐ ओलखौ,
प्रस्तुत रस कौ और प्रकास ।
वरणीजै रस हूऐ विरोधो,
अमर दारारथ सुरथ अवकास ॥ १२ ॥
प्रस्तुत अरथ नयोथै पेखौ,
अरथ अपुष्ट क्रष्ट है आंन ।
व्याहत जेण निगादर वरणै,
औही जठै हूऐ उपमांन ॥ १३ ॥
उभैवार पुनरुक्त अरथ इक,
दुक्रम आछौ क्रम नहि दाय ।
ग्राम्य गिवारू अरथ कहै गिण,
ससंदेह संदग्ध सुणाय ॥ १४ ॥
कहि निरहेत कहै नहि कारण,
विरुध प्रसिद्ध विद्य विरुद्ध ।
एक अरथ रचना अनविक्रत,
अनियम नियम विषै मति उद्ध ॥ १५ ॥
अनियम जठै नियम जो आंणै,
और विसेष विषै अविसेष ।

ठह विसेष अविसेष ठिकांणै,
अपद मुक्त पारष अवरेष ॥ १६ ॥
पूरण करण ठौड नहिं पूरण,
पूरण करै और थल पाय।
भण अश्लीलजसहचर भिन्नह,
बुरा भलारौ संग बताय ॥ १७ ॥
पेखौ हियै विरुद्ध प्रकासित,
अरथ न भासै क्रम सौं आंण।
विधि अजुक्त सो दोष विचारै,
वल अनुवाद अजुक्त वषाण ॥ १८ ॥
प्रस्तुत अरथ विसेसण पेखौ,
मति अनुसार विरोधमई।
त्यक्त पुनः स्वीकृत वरणण तज,
कवि वल वरणै उक्त कई ॥ १९ ॥
रस विभचारी थाईरुचरूं,
वाच्य करै अनुभाव विभाव।
स्नम सौं पावै विभावादिसुज,
रै प्रतकूल हूवै कविराव ॥ २० ॥
पुनः पुनरदीपति पारखियै,
विन औसर विसतार वणै।
औसर विना विछेद ऊघडै,
भूर अंग विसतार भणै ॥ २१ ॥

जो रस अंगी भूलेजावै,
रुच वरणंत अनंग रस।
प्रकत विपजिय जठै पायजै,
प्रकत रसाल वन परस ॥ २२ ॥
प्रगट विरुधत किणही पदरी चाहरहै,
किल दोष नामसांकांनदियौ।
अरथ दोस वालौ कर हित,
पूरण बंक कियौ ॥ २३ ॥
अव निरणय साभल अरथ,
दिव्य अदिव्य प्रकत दिव्यादिव।
जेण विषै प्रभेद जताव धीरोद्दातधीरललिताहिधन,
धीरसांत धीरोध्रतधाव ॥ २४ ॥
इत्यादिक विपरीत उचारै,
पूरण औरस दोष प्रबंध।
रंचकर वैफल्य दोष रच,
अनुप्रासमै अरथ अपुष्ट ॥
वृत विरुद्ध प्रतिकूल वरण वद,
जमतीनपही संजुष्ट ॥ २५ ॥
अप्रयुक्ति दोषण आखीजै,
असाद्रस्य त्र्युपमान असंभ।
जाति प्रमांण विषै उपमाजय,
न्यूनत अधिक अजोगनिदंभ ॥ २६ ॥

समर दुसह चंडाल सरीखौ,
जीवै करट मारकंड जेम।
सूरज. अग्नि कणूंका सरीखौ,
नभ पाताल जिसौ इण नेम ॥ २७ ॥
निरख साधरम विषै न्यूनता,
जिको हीणपद दोष जरूर।
प्रगटै अधिकपणौस अधिक, पंद,
पेख लच्छ हव मेधा पूर ॥ २८ ॥
मूंजी लांछत क्रस्नाजनमिल,
राजै **बंक** कहै मुनिराज।
धारनील जीमूत भागधन,
सोभै जेम ग्रही सिरताज ॥ २९ ॥
पीत वसनधर धनुषधार पढ,
मनहर भीम वणै मुर मार।
जुत चपला सुर धनुष चंद्रजुत,
सोभै नील जलद जिम सार ॥ ३० ॥
भिंग वचन कर काल विधीलख,
दोष भेद उपमा दरसाय।
वारि सुधा इव अहि इव वैणी,
कीरति चाँदणियां समकाय ॥ ३१ ॥
सुख राधानूं दियै नंद सुत,
सुखदै ज्यौं पदमणिनूं सूर।

प्रीत वहैातो विष्नपदांबुज,
भागीरथी जेम गुण मूर ॥ ३२ ॥
भग्नप्रक्रम दूषण भाषीजै,
उत्प्रेक्षामै दोष अवाच ।
औ नृपछित पालंत जथा अब,
मूरतवंत धरम सुषमाच ॥ ३३ ॥
अरथांतर न्यासेज अतात्वक,
उत्प्रेछत जो अरथ अमान ।
समरथ करै जठै न्है सांँप्रत,
दूषण अनुचित अरथ निदान ॥ ३४ ॥
कटिता देख लाजरू केहर,
मोजाणै छिपियौ वनमांहि ।
अधिक गुणी आगै अलवेली,
न्यूनगुणी पग माडै नांहि ॥ ३५ ॥
समासोक्ति अप्रस्तुती प्रसंसा,
जुडै दोष पुनरुक्ति जठै ।
तुल्य विसेसण वससूं तवजै,
अति निरणाय मति हूंत अठै ॥ ३६ ॥
कलावान संजुक्त कोमदी,
निसा वहाई प्राते नील ।
उतपल मुद्रत न्है मांनूं अत्र,
सुजनिद्रत न्है तिय इव सील ॥ ३७ ॥

(जोधपुर की पुस्तक नं० २ से संगृहीत)

(कविराजा बाँकीदासकृत वृत्तरत्नाकर)

(खंडित अलंकार)

पदांरा विभागसौं पदांरो नृत्यत पणौ ॥ ओजं मिलत सैथल्यरूपप्रसाद ओजमैं एता अंतरभूत हूऐ छै। जरै झटत अर्थ प्रतीतरौ हेतुपणौ सो अर्थ व्यक्ति प्रसादमैं अंतरभूत हूऐछै ॥ प्रथकूत्वपदपणौ है रूप जिणरौ सो माधुर्ज्ज सोम्राज्य कीनौहैही। अकठन पणौ रूपहै जिणरौ सो सुकुमारता ॥ उज्ज्वल पणौ है रूप जिणरौ सो कांति। ऐअकष्टता अग्राम्यता याँरी दुष्टतारै त्यागसौं ग्रहण किया ॥ जठै परस्पर जुदांरी सहोवित्त विषै विषमपणौ इष्ट छै जठै मारगरो अभेद है आत्मा जिणरो सो समता ॥ सो दोस है ॥ भेदपणौ गुण है ॥ वीररस वाच्यरै विषै परुष वर्ण। श्रंगाररै विषै मिष्ट सचिक्कण वर्ण ॥ यूं रस सब्दांरा गुण नहीं। स्लेसादिक च्याराँ रै ओजपणौ है क्यूं। गाढबंधपणा करनै चित्तरी विस्तार रूप दीपति ॥ जिणरा जनकपणासौं ॥ हतवृत्त नहीं प्रापत है गौरवृपणौ ऐसौ अंतलघुपणौ ॥ रसरै प्रतिकूलपणौ लच्छणरै अनुसरण विषैपण असभ्यपणौ। पूरबदल उत्तरदल अंतलघुगुरू वाह ऐ दूजै तीजै पदांतनहू ऐ रस अनुकूलही वृत्त आछी वृत्त नावै ॥ असमास विभक्ति-

वाच्य हूऐ। घणां पदांरै एकत्व पणौ करै सो समास॥ जथा॥ साकवल्लभ है जिणनै सो राजा साक वल्लभ राजा औ समास॥ साक राजा मध्यम समास॥

दोहा

गोपमित्त गोपाल है, मोदकंद व्रजवंद॥
आप नित्त भूपाल है, नंद नंद बृजचंद॥ १॥

अनुप्रास अस्वगत त्रिपदी कपाटबंध गोमूत्रिका ऐसै और ही चित्र है सो। अनुप्रास चित्रकौ सदेदसंकर है॥

अथ अलंकार लिख्यते

अलंकारां विषै जथा जोम दोष संभवै सो पूर्वोक्ति दोषमैं मिलैहै जिणसैं पृथक्त्व न कहिसां। अनुप्रासरा दोश प्रसिद्ध भाव वैफल्य वृत्त विरुद्ध सो अप्रसिद्ध अपरपुष्टार्थ प्रतिकूलवर्ण यांनूं लांवै नहीं॥

क्रमेण उदाहरण

चक्री पंक्ति चक्रो प्रसन्न है स्तुति करै हरि हय हरिश्च धूर्ज्जटी धूर्ज्जजाता अक्ष नक्षत्र नाथो अरुण वरुण कूबराग्रं कुबेर रंघ संघ सुराणां इसा रथ वालौ रवि त्वं रक्षक व्है॥ अत्र कर्त्ता चक्र्यादिक स्तुति क्रियारथ अंग कर्म॥ सो औ प्रसंग सूरजरी स्तुतिरा व्यास वाक्यादिकां विषै नहीं यातैं प्रसिद्ध भावदोष॥ अनणरण नू मणिमेषल मविरतस्य जान मंजु मंजीरं परिसरण मरुणचरणे रण रण कम कारणं कुरुते॥ पुनः॥ भण तरुण रमण मंदर मानंद संदि सुंदरेंदुमुखी

रदा इंद्र धनु चंद्र सहित नील बलाहक सोभै ज्यूं अत्र चंद्र-धिक सो अधिक पद प्रथम विषै संष न कह्यौ चामकराभवसन सिषंड चूड सहित कृस्नलसै षिगा रुची इंद्र धनु बलाका जुत नीलघन सोभै ज्यूं वग अधिक सो अधिक पद दोष पूर्व मोती कह्या चाहियै ॥ राधासौं आलिंगत तार हार दुत सहित कृष्न सोभै वीजकर अलंकृत मेघराजै ज्यूं अत्र बलाक कहे नही यातैं हीन पद ॥ अब लिंगकर कुचनकर काल-कर पुरषकर दोष भेद कहै छै ॥ वारि सुधा इव मधुर ॥ सुधा स्त्रीवाची उचित नहीं ॥ अमृत कह्यौ चाहियै नपुंसकवाची वारि सम ॥ तव कीर्ति चाँदनीयांसी ॥ अत्र चाँदनी कही चाहियै ॥ कृष्नराधाकौं सुषदेताहू अपद्मनी नूं सूर्ज दियै ज्यूं उप-मेय विषै भूतउपमान विषै भवन्काल ॥ विधीकर ॥ कृष्न चरणां त्वं प्रीतप्रकहै गंगाइव ॥ तो गंगा वहै यूं वणै नहीं गंगातौ वहै है ॥ कर्तव्यार्थ उपदेसो विधी । औ भग्न प्रक्रम दोषहै ॥ उत्प्रेच्छा विषै अवाचक दोष आवै ॥ औछित पालछित पालै जथा मूरतवान् धर्म है ॥ अत्र जथा साधर्मकी प्रतीत करै यातै उप्सा को वाचकहै मनुद्रुति संका इत्यादिक कहिणा ॥ अर्थांतरन्यास विषै अतात्वक उत्प्रेछत अर्थ समर्थ करै जत्र अनुचितार्थ दोष ॥ हे तन्वी तव कटि देष ब्रीडा सो केहरी मनूं वन मैं छिपांणौ अधिक गुणा आगै न्यूंनगुणी कद ठहरै ॥ अत्र अनुचितार्थ ॥ समासोक्ति अप्रस्तुत प्रसंसा विषै पुनरुक्ति दोष आवै तुलय विसेसण-

वसथी ॥ कोमदी कलावान् सहित रात्रि विहाई प्राते नीलोत्पल मुद्रित व्है मांनूं निद्रत व्हैहै वधू इव ॥ अत्र वधू पुनरुक्ति ॥ इति ॥

अथ कविराज बाँकीदासजी कृत वृत्त-रत्नाकर

(खंडित)

संग्या प्रबंध

जुकूसम ॥ अजुकू विसम ॥ छंदवृत्त ॥ समवृत्ति । १ । विसमवृत्ति । २ । अर्ध समवृत्ति । ३ । च्यारपद समर ॥ च्यारूं जुदा विसम ॥ वृत्ति दोहादिक अर्धसम । ३ । छाईस ताई छंद परै डंडक ॥ तापरै गाथा ॥ एकाक्षर उक्ता । १ । दोयाक्षर अत्युक्ता । २ । मध्या । ३ । प्रतिष्टा । ४ । सुप्रतिष्टा । ५ । गायत्री । ६ । उष्निक् । ७ । अनुष्टुप् । ८ । बृहती । ९ । पंक्ती । १० । त्रिष्टुप् । ११ । जगती । १२ । अति जगती । १३ । सक्करी । १४ । अति सक्करी । १५ । अष्टी । १६ । अति अष्टो । १७ । धृति । १८ । अति धृति । १९ । कृति । २० । प्रकृति । २१ । आकृति । २२ । विकृति । २३ । संकृति । २४ । अभिकृति । २५ । उत्कृति । २६ ।

मात्राछंद ॥ सामान्य नाम

आर्ज्या लच्छन ॥ सात चौकल १ गुरु इता दलमै ॥ चौकलमैं विसम मैं जगन आवै ॥ छठा गनमै जगण ॥ ४

लघुकै ॥ प्रथम दलयूं ॥ उत्तर दले जगन घर लघु ॥ बारे १८ प्रथम उत्तर १२, १५ जति ॥ सो पथ्या ॥ १२ लांघै जति विपुला । २ । ४ ज । दहूदले चपला ॥ मुख्य चपला । पूर्बमैं न उत्तर मैं २४ । ज । जघन चपला ॥ इति आर्ज्या प्रकर्ण गीती ॥ पत्थ्याका दल दोउ ॥ उत्तर सम उपगीती । प्रथम २७ दुतिय ३० उद्गीतो ॥ पूर्बदले बधतौ गुरज्यूं उत्तर आर्ज्या गीती ॥ अथ वैतालीय प्रकर्ण ॥ १४ मात्रा है। पहिला पदमैं छकलधरं अग्र रगन लघु गुरू ॥ २ मै ८ मात्रा घर रगन लघु ॥ सम मात्रा औरसू न मिलै विसमतौ मिलै ॥ विसममैं छै मात्रा आगै रगन यगन मेलणौ ॥ सममैं ८ आगै रगण यगण मेलणौ उपछंदक सो विसमपदे छ मात्रा आगै भगण दोय गुरू सम पदमैं ८ मात्रा अग्र भग ८ नै दोय गुरू ॥ सो आपा तलिका ॥ छमात्रा आगै रगण लघु गुरू । सममैं आठ आगै रगण लघु गुरू ॥ पिण दूजी तीजी मात्रा भेली कहिणी ॥ ४ पदांमैं सो दाक्षणातिका ॥ दूजौ लघु तीजासौं मिलै विसमपदमैं ॥ सो उदीच्य व्रत्ति ॥ पांचमौं चोथौ लघु मिलै सो प्राच्यव्रत्ति ॥ विसमपद उदीच्य वृत्तिका ॥ सम पद प्राच्यवृत्तिका सो प्रवृत्तके ॥ प्रवृत्तक का पूर्ब दल जिसा दोई दल सो परांतिका ॥ प्रवृत्तक का उत्तर दल जिसा दोई दल सो चारुहास्यनी ॥ इति वैतालीय प्रकर्णम् ॥ अनुष्टुपू करकै उत्पन्न सो वक्त्र छंद लिखीजै ॥ च्यारूं पदमैं नगण सगण आदिनावै ॥ च्यारूं अक्षर गुरु

धरणाकै ५ मौ कै छठौ लघु धरणौ अंत गुरू सो वक्र ॥ सम पदमैं ७ मौ लघु सो जुग्म विपुला ॥ च्यारूं पदांमैं १६ लघु सो अचल धृति ॥ नवमौ लघु अंते गुरु सोलै सो मात्रा-समक ॥ दो गुरु ५ लघु सोभिश्लोक ॥ आठ मात्रा आगै ९ मौ लघु सौ बानवासिका ॥ आठ मात्रा आगै भगण दो गुरू सो उपचित्रा ॥ ५ मौ ८ मौ ९ मौ लघु सो चित्रा ॥ ९ मौ गुरू सो अपचित्रा ॥ मात्रा समकादिकरा पद व्है सो पादाकुलक ॥ तीस मात्रा कर अंते गुरु सो सिषा ॥ तीस लघु १ गुरु सोषजापैलादलमैं १६ गुरु ॥ दूजा दलमैं ३२ लघु ॥ सो अनंगक्रांडा ॥ २८ लघुमैं अंते गुरू सो अति रुचरा ॥ सिषाकै पद विषै इणरै दल विषै ॥ इतिमात्रा प्रकर्णं ॥ अथ वर्ण प्रकर्ण ॥ १ गुरु श्रीछंद ॥ २ गुरूकौ स्त्रीछंद ॥ मगनकौ नारी ॥ रगनकौ मृगी ॥ मगन गुरु कन्या ॥ १ भगण दोयगुरू सो पंक्ति ॥ तगन यगण तनु-मध्या ॥ नगण यगण ससिवदना ॥ तगण सगन वसुमति ॥ रनगन १ गुरु मधु ॥ जगण सगण १ गुरू कुमारललिता ॥ तगन भगण गुरु चूडामणी मगन सगन गुरु मदलेखा ॥ सगन रगण गुरु हंसमाला ॥ रभगण २ गुरु चित्रपदा ॥ रमगण २ गुरु विद्युन्माला ॥ भगण तगण लघु गुरु माणवक भगण नगण २ गुरुहंस ॥ रगणजगण गुरुलघु समांनका ॥ जगन रगण लघुगुरु प्रमांणका ॥ तगण रगण लघु गुरु नाराचक ॥ जगण तगण २ गुरु वितान ॥ १ रगण नगण सगण सोहल-

मुखी ॥ रनगण १ मगण भुजग ससुभृता ॥ मगण सगण जगण गुरू ॥ सो सुध्रविराट ॥ मगण नगण यगण गुरु सो पणव ॥ रगण जगण रगण गुरु सो मयूर सारणी ॥ भगण मगण सगण गुरु सो रुक्मवती ॥ भगण मगण सगण गुरु सो चंपकमाला ॥ मगण भगण सगण गुरु सो मत्ता ॥ नगण रगण जगण गुरु सो मनोरमा ॥ १ तगण २ जगण २ गुरु सो उपस्थित ॥ २ तगण १ जगण २ गुरु सो इंद्रवज्रा ॥ जगण तगण जगण २ गुरु सो उपेंद्रवज्रा ॥ इंद्रवज्रा उपेंद्रवज्राका पद मिलै ११ आक्षरौ औरही पद आवै सो उपजाती ॥ नगण १ । २ जगण लघु गुरु सो सुमुखी ॥ ३ भगण २ गुरु सो दोधक ॥ मगण १ । २ तगण २ गुरु । च्यार सात विषै जाति सो सोसालनी ॥ मगण भगण तगण २ गुरु ॥ सो वातोर्मी ॥ भगण तगण नगण २ गुरुसो श्री ॥ पांच छ विषै जति ॥ मगण भगण नगण लघु गुरु सो भृमर विलसत्ता ॥ रगण नगण रगण लघु गुरु सो रथोध्रता ॥ रगण नगण भगण दोय गुरु सो स्वागता ॥ २ नगण सगण २ गुरु सो वृत्ता ॥ रनगण रगण लघु गुरु सो भद्रिका ॥ रगण जगण रगण लघु गुरु सो सेनका ॥ जगण सगण तगण २ गुरु सो उपस्थित ॥ इनूं केई सिषंडित कहै ॥ भगण तगण नगण दो गुरु सो मौक्तिकमाला ॥ रगण नगण भगण सगण सो चंद्रवर्त्म ॥ जगण तगण जगण रगण वंसस्थ ॥ रतगण जगण रगण सो इंद्रवंसा ॥ ४ ज मोतीदाम ॥ ४ स तो-

टक ॥ न ॥ रन १ रगण ॥ सोद्रुम विलंबत ॥ मभजयगण सो द्रुतपद ॥ २ नमयगण ॥ ८, ४ विषै विश्राम सो पुट ॥ रन २ रगण सो प्रमुदित वदना ॥ नयनयसो कुसमविचत्रा जस जस सो जलोध्रतिगति॥ य ४ भुजंगप्रयात ॥ र ४ सो स्रगवेणी ॥ नभजरगण सो प्रियंवदा ॥ तय तय सो पुस्पविचत्रा ॥ तय तय है ६ विषै जति सो मणिमाला ॥ तभजरगण सो ललिता। सज। रस गण ॥ प्रमताद्वता ॥ ननभरतोत्थ भिहतोज्वला ॥ ममयय सात पांचविषै जति सो वैस्वदैवा ॥ मभसम सो जलधरमाला ॥ नज मय सो नवमालनी ॥ २ न २ रगण सात पाँच विषै जति सो प्रभा ॥ जर जर सो पंचचामर ॥ मजजर सो मालती ॥ न १, २ जय ॥ सो तामरस ॥ सातपांच विषै जति। २ न २ त १ गुरु सो क्षमा ॥ मनजय १ गुरु। तीन दस विषै जति सो प्रहर्षणी। जभ सज गुरु। ४, ९ विषै जति सो रुचिरा। मतयस गुरु सो मत्तमयूर ४, ९ विषै जति ॥ जसतस गुरू सो उपस्थित ॥ जतसज गुरु सो संधिवर्षणी ॥ नजसज गुरु सो मंजुभाषिणी ॥ सज ॥ २ सगण १ गुरु सो नंदनी ॥ २ नतर गुरु सो चंद्रिका ॥ छ सात विषै जति ॥ मतनस। २ गुरु सो संबंधा ॥ ५, ९ विषै जति ॥ ननरसलघुगुरु सात २ विषै जति सो अपराजिता ॥ ननभनलघुगुरु सो प्रहर साकलिका ॥ तभजज। २ गुरू सो वसंततिलका ॥ कास्यप मुनिसिंघोध्रता ॥ सैतवडदवर्षिणी ॥ गोम मधुमाधवी ॥

चेतोहर रामकीर्ती ॥ भजसन ॥ २ गुरु सो इंदुवदना ॥ मसमभ । २ गुरु सो लोला ॥ सात २ विषै जति ॥ मभनत । २ गुरु सो हंससेना ॥ ४,१० विषै जति ॥ १,४ लघु १ गुरु सो ससिकला ॥ औही स्रगहै छ नव विषै जति हूआ ॥ औही मणिगणनिकराहै ८,७ विषै जति हूआ । ५ मसो कामक्रीडा ॥ ननमयय सो मालिनी ॥ ८,७ विषै जति ॥ नजभजर सो प्रभद्रक ॥ सजंननय ॥ पांच दस विषै जति । सोयेलामरमयय सात ८ विषै जति सो चंद्रलेखा ॥ भरननन गुरु सो ऋषभ गजविलसत ॥ ७,९ विषै जति ॥ नजभजरगुर सो बांणणी ॥ यमनसभलघुगुरु । छ ११ विषै जति सो सिषरणी ॥ जसजसयलघु ८,९ विषै जति सो पृथ्वी ॥ भरन भन लघु गुरु १०७ विषै जति सो वंसपत्र ॥ नसमरस लघु गुरु ६, ४, ७ विषै जति सो हरणी ॥ मभनतत । २ गुरु सो मंदाक्रांता ४, ६, ७ विषै जति ॥ नज भजज लघु गुरु सो नर्कुटक ॥ ७, ६, ४ विषै जति हूआं औकौकिलक ॥ मतनययय ५, ६ विषै जति सो कुसमितलता ॥ ननययय्य १०,८ विषै वृत्ति सो लताछंद ॥ यमन सरर गुरु सो मेघ विस्फुर्ज्जत ॥ मसजससतत गुरु सो सार्दूलविक्रीडत ॥ रभज ततत गुरु सो बल्लकी ॥ १०,९ विषै यति ॥ मरभनयन लघु गुरु सो सुवदना ॥ रज रज रज अंते गुरु लघु सो वृत्त ॥ मरभन ययय सो स्रग्धरा ७,७,७ विषै यति ॥ भभभयन रन गुरु सो भद्रक १०,१२ विषै यति ॥ सजतनसरर

गुरु मेहास्रग्धरा ॥ ७,७,७ विषै जति ॥ नज भज भजभ लघु सो अस्वललित ॥ ममतननन लघु सो मत्ताक्रीड ॥ ८,५,१० विषै जति ॥ भतनसभभनय सो तन्वी ॥ भमसभ-ननन गुरु सो क्रौंचपदा ॥ ५,५,८,७ विषै यति ॥ मम-तनरन नरस लघु सो भुजंगविजृंभत ॥ मननननननस दो गुरु सो अपवहाथ ॥ ९,६,६,५ विषै यति ॥ इति सम-वृत्ति प्रकरणं ॥ मनययययययरर सो चंडा पृष्टिप्रयात डंडक ॥ नन सात आगै रगन वधीयां नाम ॥ १ अरण । २ अरणव ॥ ३ व्याल ॥ ४ जीमूत ॥ ५ लीलाकर । ६ उद्दाम । ७ संष इत्यादिक नाम पावै ॥ ननयय ययययय सो प्रचितकसडंडक ॥ इति समवृत्ति ॥ अथ अर्धसमवृत्ति ॥ विसमदल मैं ३ सलघु-समदल मैं इभ २ गुरु सो उपचित्र ॥ विसम दल मैं ३ भ २ गुरु समदल मैं न जजय सो द्रुतमध्या ॥ विसमदले ३ स २ गु समदले इभरगु सम । सो वेगवती ॥ समदले तजर १ गु विसमदले मसज २ गु सो भद्र विराट ॥ विसमदले सजसगु । समदले भरनर गु सो केतुमती ॥ विसमे ततज २ गु । समे जतज २ गु सो **आख्यानकी** ॥ विसमेजतज २ गु ॥ समे ततज २ गु । सो **विपरीत आख्यानकी** ॥ विसमेससस लघु ॥ समेन भरभर सो **हरणी पुलता** विसमेननरलघु ॥ समेनजजर सो वक्त्रं ॥ विसमेननर समेनजजर गु सो पुस्पताग्रा ॥ केइक वैतालीयनै अपर वक्त्राख्य केइक पुस्पताग्रानै औपछांदसि कहै इति अर्धसम वृत्ति ।

अथ पदचतुरुर्धवृत्ति ॥ प्रथमपदे ८ । २ । १२ । ३ । १६ । ४ । २० ॥ ३ पद या विध ४ पदांत २ गु । सो पीड ॥ १ पदे । १२ । २ । ८ ॥ ३ । १६ । ४ । २० सो कलिता ॥ १ । १२ २ ॥ १६ । ३ । ८ । ४ । २० दो गुरुच्यारों पदांते सो लवल्या ॥ १ । १२ । २ । १६ । ३ । २० । ४ ॥ ८ ॥ सो अमृतधारा ॥ पदचतुरुर्धप्रकर्ण संपूर्णम् ॥ आदपदे सजसलघु । २ ॥ नसजगु ॥ ३ ॥ भ नजलघु । ४ ॥ सज सजगु ॥ सो उद्गीत तीन इण जिसापद तीजामै रनभगुसो सैारभक ॥ तीन पद उसाहीज । तीजामै नन ससो ललित ॥ इति उद्गाताप्रकर्ण ॥ प्रथमपदे मसजभरगु ॥ दूजा सनजरगु ॥ तीजामैननस । ४ मै ॥ ननजय सो उपस्थित प्रचुपित ॥ और पद प्रथम जिसा तीजा मै तजर सो आरषभ ॥ इति उपस्थित प्रचुपित प्रकर्ण ॥ अथ गाथा ॥ कै विसम अक्षर है पद मौकै विषम पद ह्वै ॥ सो गाथा ॥ इति श्रीवृत्तिरत्नाकर लिखते आसीया बाँकीदास सहर जोधपुर मध्ये ॥

काव्य के गुण-दोष (खंडित) जो कविराजा बाँकीदासजी के प्रतीत होते हैं।

पणांसूं ज्यूं भेद छै त्यूं गुणारै नै अलंकारांरै भेद छै ॥ अथ गुणभेद ॥ माधुर्ज्ज ओज प्रसाद क्रमकर लच्छण आल्हादिक पणौ सो माधुर्ज्जस्रंगार द्रुतिकारण करुणा विप्रलंभसांते अत्यंत द्रुतिरौ कारणकों कहै दुतिकांई जिणरौ समाधान सामाजिकां सभ्यारै चित्तविषै नव रसांरै समूह सूं प्रगट होण जोग तीन अवस्था इति १ विस्तार २। विकास ३ ॥ किणां रसां सूं किसी अवस्था है सिंगार करुणा सांतसूं द्रुति वीर विभच्छ रुद्रसूं विस्तार हास्य अद्भूत भयाणकसूं विकास हास्य विषै वंदनीयकौ अद्भूते नेत्र विकासभया एकसूं सीघ्रगवन ॥ ओजलच्छन चित्तरै विस्तार रूप दीपतिरौजनक ओज वीर-विभच्छ रुद्र विषै क्रमकर ओजरौ आधिकपणौ प्रसाद लच्छण ॥ अग्निज्यूं सूकै काष्टप्रतै व्याप्त व्हैछै फेरुं निर्मल जल मिसरी प्रतै व्यापि जिण तरहसूं चित्तप्रतै जो व्याप्त होय सो प्रसाद ॥ सर्व रसां विषै सर्व रचनां विषै स्थिति है जद प्रसादगुण वीर-रुद्रादिकां विषै चित्त प्रतै व्याप्त होय जद सूका काठ विषै

अग्नि ज्यूं जद प्रसाद गुण चित्तप्रतै सिंगार करुनादिकांरै विषै व्याप्ति होय निर्मल जल सिताप्रतै ज्यूं ॥ स्लेस १ प्रसाद २ समता ३ माधुर्ज्ज ४ सुकुमारता ५ अर्थव्यक्ति ६ उदारार्थ ७ ओज ८ क्रांति ९ समाधि १० ए दस गुण डंडी मानैछै सो तीनां ही में अंतरभाव हूऔछै ॥ केइक दोसरा अभावपणै कर अंगीकार कियाछै। केइक दोस रूप छै अठा आगै माधुर्ज्जादिक तीन गुण ज्यांरा व्यंजकवर्ण कहैछै। वरण समास रचना जिकां गुणांरो व्यंजक होय किसा गुणरा किसा विंजक ॥ मखंका विषै आपरै वर्गरै छेहला अक्षर करके जुक्त ट ठ ड ढ करकै रहित इ कसौं लेंनैमतांई जिके अक्षर। ह्रस्व सुर सहित रेफनै णकार असमासनै मध्यम समास माधुर्हुवती पदांत जैण विषै रचना औ माधुर्ज्ज गुणरा व्यंजकछै वर्गरै प्रथम नै त्रतिय करनै वर्गरै दूसरै चौथै क्रम कर जोग रेफ करनै जोग होय तूल्य अक्षरांसै जोग होय ट ठ ड ढ श ष इसा वर्ण दीर्घ समास विकट संघटना औ ओजरा व्यंजक छै स्रवण मात्रकरनै सुणियां थकां वर्ण समासनै रचनों आं अर्थरी प्रतीत करै सो प्रसाद गुण ॥ संधिरै सुंदरपणैं सूं पदांरै एक पद पणै करनैव्है ज्यूं प्रकास सो श्लेस ॥ "उन्मज्जज्जलकुंजरेंद्रबहलास्फालानु-बंधोधुतः" ॥ इति उदाहरण ॥ आरोहा अवरोहा सरूपहै। जिणरौ सो समाधि ॥ आरोह सो गाढता अवरोह सो सिथि-लता ॥ चंचल जो भुज त्यांकर भमाई जो चंडगदा तिणरौ अभिघात तिणकरनै संचूरणत आरोह चढबौ अवरोह उत्तरबौ ॥

इति आरोह ॥ उरुदोय सुजोधनरा अठातांई अवरोह ॥ भे सौहू औरुधर तिणकंर रक्त है कांति जिणरो सो थारै फेरनूं सोभित करैलौ थारै अठातांई आरोह ॥ हे देवी भीमकरैला अठांतांई अवरोह ॥ विकटवंधपणौहै सरीर जिणरौ सो उदारता ॥...॥*

---

* यह अपूर्ण और खंडित ही प्राप्त हुआ। इस खयाल से इसको इस ग्रंथावली के साथ लगा दिया है कि इसको देखकर डिंगल के विद्वानों के संग्रह में बांकीदास-कृत ये ग्रंथ पूरे मिलेंगे तो फिर कभी वे पूर्णरूप में छापे जा सकते हैं।

—सम्पादक।